एक साधारण व्यक्ति की बहुमुखी जीवन-यात्रा का विवरण है, जिसकी असाधारणता भविष्य के द्वारा निर्णीत होनी है। जिनको काव्य में रुचि होगी और ज़िन्होंने संवेदना की पूंजी पायी होगी, वही मुझे विशिष्ट मानकर भविष्य में केवल मेरी जीवन-गाथा होने के कारण इसमें रुचि लेंगे। जन-साधारण तो जीवन की प्रेरणादायक कथा तथा रोचकता के कारण ही इसको अपनायेंगे और मैं इसे साहित्य के विद्यार्थियों के लिए ही नहीं, जन-साधारण के लिए भी, रुचिकर बनाना चाहता हूँ। आत्मकथा में रोचकता होनी ही चाहिए अन्यथा वह या तो पुस्तकालय की आलमारियों की शोभा बढ़ायेगी या दीमकों के पुस्तक-प्रेम को तुष्ट करने में सहायक होगी।

उपर्युक्त भूमिका का तात्पर्य यही है कि नगरपालिका के साढ़े तीन वर्षों के जीवन में आई दो-एक हलकी-फुलकी रूमानी तथा जासूसी एवं औपन्यासिक कहानियों जैसी रोचक सच्ची घटनाओं की झलक भी मैं दे दूँ। ऐसी ही एक घटना का वर्णन मैं अब करने जा रहा हूँ।

नगरपालिका के मेरी युवक-पार्टी के एक सदस्य के पुत्र के विवाह में हम 7-8 व्यक्ति जीप से टाटा नगर गये थे। वहाँ से लौटते समय संध्या होनेवाली थी अतः रामगढ़ नगर के बाहर की एक नदी के किनारे मोटर रोक दी गयी और ड्राइवर समेत सभी सदस्य पुल से उतरकर नदी की ओर निवृत्त होने चले गये। केवल मैं अकेला मोटर में बैठा रहा। अचानक एक रिक्शे पर दो सुंदर तरुणियाँ बगल से निकलीं जिनमें से एक से आँखें चार होने पर वह मुस्कुरा उठी। उसके मनमोहक रूप ने क्षण भर में जैसे मुझ पर जादू-सा कर दिया और मैं उसकी ओर तब तक देखता रहा जब तक रिक्शा मेरी दृष्टि से ओझल न हो गया। वह भी बीच-बीच में मुड़-मुड़कर मेरी ओर देखती गयी थी। सभी साथियों के लौटने पर मैंने उनसे यह घटना बतायी और सभी जंगल में रिक्शे पर दो सुंदर युवतियों के विषय में उत्कंठा से भर गये। हम सभी कार में बैठकर रवाना हुए और थोड़ी दूर जाने पर एक गाँव के बाहर वह रिक्शा हमें खड़ा दिखाई पड़ा। परंतु वह खाली था। रिक्शेवाले से पूछने पर उसने बताया कि वे दोनों युवतियाँ उतरकर सामने गाँव में चली गयी हैं। उनके बारे में बहुत पूछने पर उसने बताया कि वे अच्छे घरों की नहीं हैं। इतना संकेत काफी था। हम सभी उतर कर गाँव की ओर बढ़े जहाँ दस-पाँच कच्चे घरों के सिवा और कुछ नहीं था और इस प्रकार की तड़क-भड़कवाले परिधान में सजी-धजी युवतियों की वहाँ अपेक्षा नहीं थी क्योंकि कोई विशेष आयोजन भी नहीं दिखाई दिया।

हमें रिक्शेवाले की बात सही जान पड़ी। गाँव के आगे खेतों के पार हमें एक खपरैल का बड़ा भवन दिखाई दिया और हमने अपनी उत्सुकता मिटाने को उस ओर बढ़ने का निश्चय किया। 6-7 व्यक्ति साथ थे इसलिए आगे बढ़ने में कोई भय नहीं था। सड़क पर ड्राइवर के साथ हमारी मोटर खड़ी थी इसलिए पलायन की समस्या उपस्थित होने पर उसका भी समुचित साधन उपलब्ध था। भवन के बाहर एक व्यक्ति खड़ा था जिसने हमें देखकर कहा, 'आइए, भाई साहब, चले आइये'। उसके बोलने के ढंग और आत्मीयता से हमारा रहा-सहा भय भी जाता रहा। वह हमें अपने साथ उस मकान के अंदर ले गया जहाँ अत्यंत सुंदर सजावट के साथ एक बड़े हॉल में कई कुर्सियाँ लगी थीं। बाहर से अंदर की इस सजावट का अनुमान नहीं किया जा सकता था। हॉल के बाद आंगन के चारों और 8-10 कमरे थे जिनमें से निकल निकलकर सुंदर वस्त्रों में सजी 7-8 तरुणियाँ हमारे सामने आकर खड़ी हो गयीं। पल मात्र में अलिफलैला का-सा दृश्य उपस्थित हो गया। उस व्यक्ति ने कहा, 'आप लोग अपने लिए उपयुक्त साथी की तलाश कर लें। केवल दस रुपयों की फीस है।' फिर क्या था! सभी भूखे भेड़ियों की तरह टूट पड़े। जिस तरुणी ने मेरी दृष्टि अपने रूप-जाल में खींच ली थी, उसे मुझे दिखाते हुए और उसे मेरी ओर ढकेलते हुए उसकी सहेली ने कहा, 'ले, तेरे मन का मीत आ गया न। तू इन्हीं पर तो लट्टू हो रही थी!' उसने लज्जा से सिर झुका लिया। सभी लोगों ने उसकी सहेली की बात सुनी और सब से अधिक सुंदर होने पर भी, यह कह कर कि यह तो गुलाबजी की प्रेमिका है, उसे मेरे लिए छोड़ दिया। मैं मंत्रमुग्ध-सा सब के अलग-अलग कमरों में चले जाने पर उसके साथ हो लिया। मैं उसके रूप पर और उसकी मुस्कान और सलज्ज मुद्रा पर तो मुग्ध था परंतु उसके प्रति मेरे मन में कोई वासनात्मक विचार नहीं आ पाया। मैं घंटे भर उससे केवल बातें करता रहा और जब दस रुपये पकड़ा कर वापस आने लगा तो वह रुपये लेने में आनाकानी करने लगी। पर मैंने वे रुपये जबरन उसे लेने को विवश कर दिया। वह बंगाल से कुछ दिन पूर्व ही आयी थी और बातचीत में अत्यंत सुसंस्कृत थी। अंत में सभी साथी जब अपने-अपने कमरों से बाहर आ गये तो उसने फिर मेरी ओर सलज्ज दृष्टि से देखते हुए उस व्यक्ति से जो हमे अंदर ले गया था, कहा 'ये मुझसे अलग ही बैठे रहे फिर भी ये रुपये जबरन मुझे दे रहे हैं। मैं ये रुपये कैसे ले सकती हूँ!' सब साथी मेरी मूर्खता पर हँसने लगे परंतु मैंने अपनी झेंप छिपाते हुए कहा, 'मैंने तुम्हारा घंटे भर का समय लिया। यह उसकी कीमत है।

मुझे याद रखना।' मैं इसके आगे नहीं बोल सका। हम सब जब वहाँ से चले तो सब युवतियाँ तो अंदर ही रहीं पर वह तरुणी बाहर निकलकर मुझे उस समय तक देखती रही जब तक मैं उसकी दृष्टि से ओझल नहीं हो गया। मैं भी मुड़-मुड़कर उसकी ओर देख लेता था। मेरा आकर्षण रूप की सीमा तक था। अपनी पत्नी के अतिरिक्त मैंने किसी दूसरी स्त्री से कभी संपर्क नहीं किया था। शायद यही उस स्त्री के प्रति आकर्षित होते हुए भी मेरे अलग रहने का कारण हो सकता है।

एक और घटना मेरे नगरपालिका के जीवन में घटी जिसकी याद आते ही आज भी मेरा मन कड़वाहट से भर जाता है तथा अपने को दोष देने लग जाता है।

नगरपालिका के स्कूल में शिक्षिका के पद के लिए एक युवती ने आवेदन दिया था। हमारी पार्टी के कुछ मनचले सदस्यों ने चेयरमैन को, मेरी जानकारी के बिना एक साथी के स्थान पर बुलाकर उस तरुणी को रात के 7-8 बजे यह कहकर बुलाया कि नगरपालिका के अध्यक्ष आये हुए है अतः उसकी नियुक्ति की बात हो जायगी। वह युवती वहाँ पहुँची तो इधर-उधर की बातों के बाद उसे एक शीशे के गिलास में शराब पीने को दी गयी। वह भौंचक्की रह गयी। सारी बातें भाँप कर उसने चेयरमैन साहब की ओर मुड़कर कहा, 'चेयरमैन साहब, आप तो मेरे पिता तुल्य हैं। मैं आप से ऐसी आशा नहीं करती थी।' परंतु **कामातुराणां न भयं, न लज्जा**। उसके अनुनय-विनय पर किसीने ध्यान नहीं दिया। वह किसी तरह अपनी इज्जत बचाकर वहाँ से भागी। उस युवती द्वारा चार पन्नों में लिखा गया सारी घटना का विवरण नगरपालिका की मीटिंग में सभापति नारोबाबू ने मेरे सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत किया क्योंकि चेयरमैन की ओर से मैं ही मीटिंग में सारे उत्तर दिया करता था और चेयरमैन के अनुचित कर्म का भी उत्तर मुझे ही देना था यद्यपि यह स्पष्ट था कि वह घटना जिस गाँव की है, मैं कभी वहाँ गया ही नहीं था और किसीने भी मुझ पर कोई आरोप इस घटना के संबंध में नहीं लगाया था। प्रत्येक मीटिंग के पूर्व प्रश्नों की लंबी फेहरिस्त आ जाती थी जिनका उत्तर देना मेरा ही काम था परंतु इस बार प्रश्न नहीं, एक स्त्री का अभियोगपत्र था जिसका मुझको उत्तर देना तथा चेयरमैन के इस आचरण का बचाव करना था। मैंने उसे पढ़ा और उसकी विवरण-शैली देखकर दंग रह गया। सच्ची घटना होने के कारण उसका वर्णन अत्यंत सजीव

था। राजनीति किस प्रकार व्यक्ति की आँखों पर पक्षपात का चश्मा लगा देती है, उसका प्रत्यक्ष उदाहरण अब मैं दे रहा हूँ। हमारे विरोधी नारोबाबू द्वारा प्रस्तुत किया जाना और विरोधी दल द्वारा समर्थित होना ही मेरे लिए उस घटना की असत्यता का प्रमाण था। उस युवती ने सारी घटना पूरे कथोपकथन के साथ लिखी थी जिसके कारण उसे प्रेमचंद की कोटि की उपन्यास-लेखिका का फतवा देते हुए मैंने उसकी करुण पुकार को बहुमत से निरस्त करा दिया। मैंने उस समय उस पत्र को असत्य ही समझा था। कई वर्ष बाद मुझे इस घटना की सत्यता का पता चला और मैंने अपना सिर पकड़ लिया। जिस प्रकार नगरपालिका के मेरे द्वारा बहुत से अच्छे काम किये गये, उसी प्रकार इस अविचार का दोषी भी मैं अपने को ही मानता हूँ। बोर्ड की मीटिंग में अध्यक्ष की ओर से उत्तर-प्रत्युत्तर सब मैं ही देता था तथा मेरे द्वारा दिये गये संकेत पर ही वोटिंग होती थी अतः यदि मैंने गंभीरता से इस प्रश्न को लिया होता तो बोर्ड भले ही टूट जाता, उस युवती के साथ किये गये दुर्व्यवहार को समर्थन देने का कलंक मेरे सिर पर नहीं चढ़ता जिससे आज भी मेरा मन कड़वाहट से भर जाता है। मुझे इस संबंध में सरदार पटेल के संबंध में सुनी हुई एक घटना की याद आती है। एक बार उत्तर प्रदेश के किसी बहुत बड़े नेता और मंत्री के संबंध में एक उच्च सरकारी अफसर युवती ने यह आरोप लगाया कि एक सर्किट हाउस में अकेली टिकी हुई पाकर उक्त मंत्री ने उसके साथ दुर्व्यवहार करने की चेष्टा की है। सरदार पटेल ने उक्त मंत्री को दिल्ली बुलाया। जब वे सरदार से मिलने पहुँचे तो सरदार उनकी ओर पीठ करके लेटे रहे और लेटे-लेटे ही पूछा, 'क्या यह आरोप सही है।' उक्त मंत्री ने सफाई में क्या कहा, यह तो पता नहीं परंतु लखनऊ लौटकर उन्होंने तुरत इस्तीफा दे दिया। यही नहीं, उनका राजनीतिक जीवन भी सदा के लिए समाप्त हो गया। सरदार ने तो ऐसे आरोप के बाद उनका मुँह देखना भी उचित नहीं समझा था। मेरा उस घटना में कोई हाथ नहीं था और मैंने अपने मोहवश उस युवती के पत्र को काल्पनिक मान लिया था फिर भी अयोग्यता और अपात्रता का दोषी तो मैं हूँ ही और अनजाने में यह पाप तो मुझसे हो ही गया। चूंकि यह समझा जाता था कि नगरपालिका का असली चेयरमैन मैं ही हूँ और मेरी इच्छानुसार ही सारे निर्णय होते हैं, उस युवती की अंतरात्मा ने शाप तो मुझे ही दिया होगा। मैं इस लेख के द्वारा अपनी भूल स्वीकार करके उस देवी से क्षमा-याचना के सिवा और क्या कर सकता हूँ!

नगरपालिका का भंग किया जाना

अध्यक्ष को हटाने के प्रस्ताव के विफल हो जाने के एक वर्ष बाद असेंबली के चुनाव का समय आ गया। कांग्रेस ने अनुभव किया कि गया नगर की सीट नगरपालिका को भंग किये बिना उसके हाथ नहीं आ सकेगी अतः उसने नगरपालिका भंग करने की ठान ली और 'कारण बताओ' नोटिस भेजा। अनुचित-उचित किसी भी कार्य के लिए कारणों की कमी तो राजकोष में कभी रहती नहीं पर टैक्स की कम वसूली का एक और कारण सरकार द्वारा पैदा किया गया। मैं बिहार के मंत्रिमंडल के प्रमुख सदस्य कृष्णवल्लभ बाबू से मिला। मेरे साथ, मुझे उनसे मिलानेवाले, उनके दाहिने हाथ, मेरे घनिष्ट मित्र कामता सिंह भी थे। मंत्रिमंडल में जब यह प्रस्ताव आया तो कृष्णवल्लभ बाबू ने हमारे विभाग के मंत्री भोला पासवान से पूछा कि वे नगरपालिका को क्यों भंग करना चाहते हैं। पासवान ने कहा कि 'टैक्सवसूली ठीक से नहीं होती।' इस पर कृष्णबल्लभ बाबू ने कहा कि टैक्सवसूली के लिए एक अधिकारी अलग से क्यों न नियुक्त कर दिया जाय! इस पर सभी सदस्यों की सहमति मिल जाने से उस समय तो संकट टल गया परंतु एक महीने बाद ही पुनः नगरपालिका को पूर्णतः भंग करने का प्रस्ताव भोला पासवान ले आया। मैं कामता बाबू के साथ पुनः राँची गया जहाँ मंत्रिमंडल की ग्रीष्मकालीन बैठक होनी थी।

मैं पहले बता चुका हूँ कि बिहार के कांग्रेसी मंत्रिमंडल में दो शक्तिकेंद्र थे। एक अर्थमंत्री डॉ. अनुग्रहनारायण सिंह का और दूसरा मुख्यमंत्री डॉ. श्रीकृष्णसिंह का। अनुग्रह बाबू का तो मुझ पर वरद हस्त था ही, डॉ. श्रीकृष्ण सिंह के दाहिने हाथ, दूसरे मंत्री कृष्णवल्लभ बाबू का समर्थन मिलने से मैं निश्चिंत हो गया कि मंत्रिमंडल में स्वायत्त शासन-मंत्री भोला पासवान की दाल नहीं गलेगी। मेरे अभिन्न मित्र कामताबाबू कृष्णवल्लभ सहाय के बँगले पर ही ठहरे और मैंने कामता बाबू के साथ उनसे मिलकर उनकी सहायता का आश्वासन ले लिया। इसके बाद मैं अनुग्रह बाबू से अकेला मिला। उन्होंने गीता का उल्लेख करके मुझे सफलता-विफलता से अनासक्त रहने का उपदेश तो दिया परंतु यह अवश्य जोड़ दिया कि मैं तो जहाँ तक होगा तुम लोगों को समर्थन दूँगा ही परंतु मत्रिमंडल में मैं अल्पमत में हूँ और कृष्णवल्लभ बाबू ही मुख्यमंत्री की ओर से सारे तंत्र का संचालन करते हैं। यदि उन्होंने तुम्हें समर्थन देने का वचन दिया है तो विशेष चिंता की बात नहीं है। अनुग्रह बाबू की सलाह पर मैं स्वायत्त-शासनमंत्री भोला पासवान से भी मिला परंतु वह मिलना औपचारिक था और वे बिल्कुल रोष की मुद्रा में मिले। उनकी बातचीत से मैं

समझ गया कि अपना बस चलते वे गया नगरपालिका के हमारे शासन को भंग करने में कुछ भी उठा न रखेंगे।

मैं कह चुका हूँ कि नगरपालिका में प्रायः 150 प्राथमिक विद्यालय चलते थे जिनमें शिक्षकों की संख्या एक हजार से ऊपर थी। उनका प्रोविडेंट फंड हम लोगों के आने के पूर्व के तीन वर्षों में सरकारी नियंत्रण के काल में सेविंग्स बैंक में कभी जमा नहीं किया गया था। यही नहीं, आफिस के किरानियों का भी प्रोविडेंट फंड जमा नहीं किया गया था जो जमा होना चाहिए था। हम लोगों के तीन वर्षों के कार्यकाल में भी वैसी ही अनियमितता चलती रही। शिक्षकों ने जब मुझसे अपने 6 वर्षों की बकाया प्रोविडेंट फंड की राशि जमा करने का आवेदन किया और न करने पर हड़ताल की धमकी दी तो मैंने उन्हें यह सुझाव दिया कि नगरपालिका की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि 6 वर्षों के बकाया प्रोविडेंट फंड की राशि एक साथ जमा की जाय। मैं प्रति माह एक वर्ष की बकाया राशि जमा करता जाऊँगा। केवल उन्हींकी नहीं, अपने आफिस के सैकड़ो किरानियों की भी, जो मूक भाव से यह अन्याय झेलते आ रहे थे, बकाया प्रोविडेंट फंड की राशि इसी प्रकार जमा करता रहूँगा। शिक्षक-समुदाय के प्रतिनिधि, जो राजनीति से प्रेरित थे, अड़ गये कि सारी राशि एक साथ जमा होनी चाहिए। यह शर्त नगरपालिका की दयनीय आर्थिक स्थिति को देखते हुए, पूरी करनी असंभव थी। फलस्वरूप शिक्षकों ने हड़ताल कर दी। हड़ताल ही नहीं की, उन्होंने अपनी-अपनी स्कूलों में ताला भी लगा दिया, जो सर्वथा अवैधानिक था। एक-दो दिन प्रतीक्षा करने के बाद मैंने जिलाधीश से पुलिस की सहायता लेकर सारे ताले खुलवा दिये और शिक्षकों को नोटिस भिजवा दिया कि यदि वे दो दिन की अवधि में काम पर नहीं आयेंगे तो उनके स्थान पर नये शिक्षकों की भरती प्रारंभ कर दी जायगी। शिक्षकों को तो काम पर नहीं ही आना था क्योंकि उनकी हड़ताल तो राजनीति-प्रेरित थी और उन्हें कांग्रेस का छिपा हुआ सहयोग मिल रहा था। प्रदेश में कांग्रेस सरकार थी इसलिए नगरपालिका की चेतावनी की वे क्या परवाह करते! मैंने आवेदन लेकर जब नये शिक्षकों की भरती प्रारंभ की तो हडताली शिक्षकों में खलबली मच गयी। वे अपने समर्थक स्थानीय कांग्रेसी नेताओं के साथ राजधानी में विभागीय मंत्री के पास जा पहुँचे। मंत्रीजी ने सरकारी पत्र भेजकर यह आदेश भेजा कि शिक्षकों की माँगे मान ली जायँ। हमारे लिए इस आदेश का पालन करना आवश्यक नहीं था। हमने अपनी आर्थिक विवशता उन्हें लिखकर भेज दी और दो बातें उसमें और जोड़ दीं कि गया की कलक्टरी कचहरी पर हमारा 4-5 साल का टैक्स बकाया है जो मिलना

चाहिए। हमने अपने पत्र में यह बात भी लिख दी कि हड़ताली शिक्षकों की बकाया 6 वर्षों की प्रोविडेंट फंड की राशि में तीन वर्षों की बकाया राशि तो सरकारी नियंत्रण के समय की है। सरकार प्रति वर्ष सड़कों आदि की मरम्मत के काम में 60-70 हजार रुपये देती रही है परंतु हमारा बोर्ड होने के बाद से एक पैसा भी हमें नहीं मिला है और सरकार हमारे साथ प्रारंभ से विमाता का-सा व्यवहार कर रही है। सरकारी नियंत्रण के समय सरकार की दी हुई सारी सड़क-मरम्मत की राशि मेहतरों की और शिक्षकों की तनख्वाह में खर्च कर दी जाती थी। उन्होंने दफ्तर के कर्मचारियों का और शिक्षकों का एक वर्ष का भी प्रोविडेंट फंड नहीं जमा कराया। ऐसी स्थिति में हमारे सीमित साधनों से हम जितना कर सकते थे, हम कर रहे हैं। सरकार ने नगरपालिका का उत्तर मिलते ही जिलाधीश को सरकारी दफ्तरों का नगरपालिका का बकाया टैक्स अविलंब चुका देने का आदेश भेजा। उस संबंध में नीचे लिखी घटना का उल्लेख मनोरंजक होगा।

सरकार के बकाया टैक्स का जिलाधीश का चेक गोप नामक एक डिपटी मजिस्ट्रेट लेकर आया। उस चेक को नगरपालिका के बड़े बाबू ने जमा करके उसे रसीद थमा दी। रसीद लेने के बाद उसने कहा कि जिलाधीश का आदेश है कि चेक की पूरी रकम शिक्षकों के बकाया प्रोविडेंट फंड में जमा कर दी जाय। हेडक्लर्क उस मजिस्ट्रेट को लेकर मेरे पास आया जिसने जिलाधीश का मौखिक आदेश मुझे सुनाया। मैंने कहा कि चेक की यह राशि अब नगरपालिका की राशि है और इसका किस प्रकार उपयोग किया जाय यह हमारी इच्छा और सुविधा पर निर्भर करता है। जिलाधीश महोदय को नगरपालिका की रकम को किस प्रकार खर्च किया जाय, यह बताने का अधिकार नहीं है। इस पर मि. गोप ने, जो चेक लेकर आये थे, उसे सामने से उठा लिया और यह कहते हुए कि ऐसी अवस्था में मैं यह चेक वापस ले जाता हूँ, उसे वापस ले गये।

हमारे सामने एक मुद्दा आ गया। तुरत कोतवाली में मि. गोप के नाम से म्युनिसिपल फंड जबरन ले जाने का डकैती का आरोप दर्ज करवा दिया गया तथा बिहार के प्रमुख दैनिक पत्रों में इसकी खबर भिजवा दी गयी। सरकार के सभी मंत्रियों के पास भी इस सूचना की प्रतियाँ प्रेषित कर दी गयी। पत्रों के लिए यह बड़ी गर्म खबर थी और उन्होंने दूसरे दिन मोटे-मोटे कालमों में अपने प्रथम पृष्ठ पर इसे प्रकाशित किया। हमारी सूचनाएं तो सरकारी दफ्तरों में उलझ रही होंगी पर अखबारों की खबर तो मंत्रियों के सामने थी और उनकी नींद हराम कर रही थी।

दूसरे दिन दोपहर में गोप साहब चेक वापस लेकर हमारे दफ्तर में आये और उसे वापस करने का प्रयत्न करने लगे। मैंने कहा कि अब तो डकैती के मुकदमे में यह साक्ष्य के रूप में जायगा। आप इसे अपने पास ही रक्खें। गोप साहब की दशा देखने लायक थी। मेरे अन्य साथी भी इकट्ठे हो गये। अंत में सब के कहने-सुनने पर और गोप साहब की दशा पर तरस खाकर वह चेक वापस ले लिया गया और कोतवाली से केस उठा लिया गया। संध्या समय स्वायत्त शासन-विभाग के मंत्री महोदय का, जिनके बल पर शिक्षक हड़ताल पर थे, फोन आया कि बकाया टैक्स का चेक आपको वापस मिला कि नहीं। मेरे हाँ कहने पर उन्होंने संतुष्ट होकर फोन रख दिया परंतु उनके दिल में जो खार था उससे हम कैसे बच सकते थे ! जल में रहकर मगरमच्छ से नहीं बचा जा सकता। मंत्री महोदय ने शिक्षकों की हड़ताल से उत्पन्न परिस्थिति में गया नगरपालिका को सरकारी नियंत्रण में लेने का प्रस्ताव मंत्रिमंडल की बैठक में रखा। कृष्णवल्लभ बाबू ने इस पर कहा, 'एक निर्णय 15 दिन पूर्व लिया गया है, उसका परिणाम कुछ काल तक देखना चाहिए।' इस पर स्वायत्त-शासन-मंत्री भोला पासवान ने अपना त्यागपत्र देने की धमकी दी और विवश होकर अन्य सभी सदस्य मौन हो गये। एक छोटी-सी बात के लिए मंत्रिमंडल में संकट की स्थिति आ जाय, यह कोई नहीं चाहता था। मैंने भोला पासवान से मिलने के बाद यह समझ लिया था कि नगरपालिका को भंग होने से बचाना कठिन है फिर भी कृष्णवल्लभ बाबू और अनुग्रह बाबू, जो दोनों मंत्रिमंडल के दोनों गुटों के नेता थे, की सहायता से इस संकट से उबरने की आशा नहीं छोड़ी थी। इसके पूर्व मैंने एक पुस्तिका 'गया नगरपालिका के साढ़े तीन वर्ष' नामक प्रकाशित कर के आँकड़ों के बल पर यह प्रमाणित किया था कि टैक्स-संग्रह के मामले में हमारा रेकार्ड हमारे पहले के सरकारी नियंत्रण के काल की तुलना में किसी प्रकार खराब नहीं था। मैंने उसमें सरकार की उपेक्षा के प्रमाण-स्वरूप यह भी दिखाया था कि जब कि हमारे पहले सरकारी नियंत्रण के पाँच वर्षों में 60-70 हजार रुपये प्रतिवर्ष सड़कों की मरम्मत के लिए नगरपालिका को दिये जाते थे, हमारे 3-4 वर्षों की अवधि में एक पैसा भी नहीं दिया गया था। इसके साथ ही मैंने गोवधबंदी, टैक्स की सहूलियत और जल-वितरण के अपने कार्यकलापों का विस्तृत वर्णन भी उसमें किया था। मैंने उक्त पुस्तिका, विधानसभा के भवन में जाकर, प्रत्येक एम. एल. ए. और एम. एल. सी. के हाथ में पकड़ा दी थी परंतु इन सब बातों को कौन सुनता है! अनुग्रह बाबू ने मुझे बताया कि अंग्रेजी हुकूमत में जब वे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन थे, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को भी झूठा आरोप लगाकर भंग कर दिया गया था। ईसप की भेडिये और मेमने की कहानी कौन नहीं जानता!

राँची से लौटकर हम लोगों ने अपने को नगरपालिका के भंग होने की स्थिति के लिए तैयार कर लिया। भोला पासवान का अपनी पत्नी से संबंध-विच्छेद हो चुका था और गया नगरपालिका की एक महिला कर्मचारी से उनके संबंधों की चर्चा थी। उस कर्मचारी को उन्होंने ही जोर देकर अनिवार्य बालशिक्षा के निरीक्षक के पद पर मुझसे गया नगरपालिका में नियुक्त करवाया था। मैंने उसे भी, डूबते को तिनके का सहारा समझकर, भोला के पास भेजा। परंतु उसने लौट कर मुझे बताया कि भोला ने कहा है, 'तुम्हारी नौकरी कोई नहीं छू सकता। राजनीति में पड़ने की तुम्हें आवश्यकता नहीं है।' सारी बातें प्रतिकूल जा रही थीं। अंत में कृष्णवल्लभ बाबू का फोन जब मंत्रिमंडल की बैठक के बाद नगरपालिका को भंग करने के संबंध में मिल गया तो हमने एक आवश्यक बैठक करके यह निर्णय लिया कि सरकार के विमाता जैसे व्यवहार के कारण हम नगरपालिका को चलाने में असमर्थ हो रहे हैं इसलिए अच्छा है कि वह इसको भंग करके इसका प्रशासन अपने हाथ में ले ले। इस प्रस्ताव के तीसरे दिन सरकार द्वारा नियुक्त अधिकारी आ गया और नगर पालिका का अधिग्रहण सरकार द्वारा कर लिया गया।

गया लौजिंग हाउस कमेटी

जहाँ तक धार्मिक यात्रियों के लिए बनी गया नगर की, धार्मिक-क्षेत्र के संरक्षण की समिति (गया लौजिंग हाउस कमेटी) का प्रश्न है, मैं उसमें मात्र एक सदस्य था और सारा कार्य जिलाधीश करते थे। फिर भी मेरे सुझाव पर मंदिर के सामने एक बड़े हॉल का निर्माण यात्रियों की सुविधा के लिए कर दिया गया तथा मैंने विष्णुपद-मंदिर तक मोटर पहुँचने के लिए एक चौड़ी सड़क भी बनवायी क्योंकि मंदिर तक गलियों से मोटर नहीं जा सकती थी और उसे मंदिर के पीछे बहुत दूर रुकना होता था। यह सड़क मेरे नगरपालिका से हटने के बाद ही चालू हुई।

गया म्यूजियम की स्थापना

हिंदू धर्म के प्राचीन पौराणिक गया क्षेत्र में, जो बुद्धधर्म का भी केंद्र रहा है, 10 वीं, 11 वीं शताब्दी की बुद्ध और हिंदू मूर्तियाँ बिखरी पड़ी थीं। मैंने उन्हें संगृहीत करके गया नगर में नगरपालिका की ओर से गया म्यूजियम की स्थापना कर दी जो अब सरकारी सहायता से संवर्धित होकर बहुत बृहत् आकार ले चुका है।

38

विहार विधानसभा का गया क्षेत्र का चुनाव

नगरपालिका के भंग किये जाने के बाद गयानगर से असेंबली के लिए कांग्रेस के प्रतिनिधि के चुने जाने का मार्ग प्रशस्त हो गया और सरदार लतीफुर रहमान चुन लिए गये। यह घटना 1957 की है। सरदार लतीफुर रहमान गया के लिए नितांत अजनबी जैसे थे और उन्होंने चुने जाने के बाद भी कभी नगर की समस्याओं में कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी। नागरिक जीवन में भी उनका कोई योगदान नहीं था। 55 और 60 के बीच गया में विनोबाजी ने बुद्धगया में सर्वोदय-आश्रम भी स्थापित किया परंतु सरदार लतीफुर रहमान कहीं नहीं दिखाई दिये। कई बार प्रयत्न किये गये कि नगरपालिका में लोकप्रिय प्रशासन हो और इसके लिए जयप्रकाश बाबू ने 10 दिनों तक प्रत्येक वार्ड में घूम-घूम कर निर्विरोध चुनाव कराने का प्रयत्न भी किया परंतु सरदार लतीफुर रहमान ने, जो गया नगर के प्रतिनिधि थे, उनका स्वागत करने की भी शिष्टता नहीं दिखाई। मैं भूदान-आंदोलन से तो संबंधित था ही, जयप्रकाश बाबू के साथ भी नगर के प्रत्येक वार्ड में घूमता रहा, परंतु सरकार की ओर से इस संबंध में कोई भी चेष्टा न होने से सारी बातें हवाई रह गयीं।

1961 में पटना में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की मीटिंग हुई। कामता बाबू के कारण मैं भी तीन-चार दिन वहाँ टिका रहा और उसकी कार्रवाई देखता रहा। इस मीटिंग के बाद ही बिहार असेंबली के पाँचसाला चुनाव होने थे। मीटिंग की समाप्ति के बाद मैं पटना से गया लौटने के लिए स्टेशन पर ट्रेन में जगह ढूँढता फिर रहा था कि फर्स्ट क्लास के डिब्बे से सरदार लतीफुर रहमान ने मुझे पुकारा। उनकी बसें चलती थीं और स्वयं बस-मालिक होने के कारण भी मैं उनका मित्र था। व्यक्तिगत रूप से वे बहुत शालीन और व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे। उनके पुकारने पर मैं उनके डिब्बे में चढ़ गया और उन्होंने अपनी बगल में मुझे बैठने को जगह दे दी। बातों ही बातों में नगरपालिका के सरकारी अधिग्रहण से मुक्त कराने की चर्चा छिड़ गयी। मैंने उनसे कहा कि जयप्रकाश बाबू 10 दिनों तक गया के दसों वार्ड में इस संबंध में घूमते रहे, आपको गया

नगर के प्रतिनिधि होने के नाते उनसे आकर मिलना चाहिए था। अगला एलेक्शन सिर पर है। जनता पर इसका अच्छा असर नहीं पड़ा है। सरदार लतीफुर रहमान ने छूटते ही कहा, 'गुलाब बाबू, मैं अब तक 14 एलेक्शन जीत चुका हूँ। जवाहर लाल का सितारा बुलंद है और मेरा भी सितारा बुलंद है। मुझे हरानेवाला अभी पैदा नहीं हुआ है।' सरदार लतीफुर रहमान की बातें मेरे हृदय में तीर की तरह चुभ गयीं। गया पहुँचने पर मुझे रात भर नींद नहीं आयी और मैं सोचता रहा कि सरदार का गर्व किस तरह चूर किया जाय। अंत में सुबह एक युक्ति समझ में आयी। मैं भोर में ही उठकर गया के एक पुराने क्रांतिकारी श्याम बर्थवार के घर पर पहुँचा। वे अंग्रेजों के जमाने में बरसों क्रांतिकारी के रूप में जेल की सजा काट चुके थे। वे पिछली बार असेंबली के लिए स्वतंत्र रूप से खड़े होकर अपनी जमानत से भी हाथ धो चुके थे। मैंने उनसे इस बार पुनः प्रत्याशी बनने का आग्रह किया। वे हाथ जोड़कर बोले, 'मैं काफी सबक सीख चुका हूँ। लोग चढ़ा कर पीछे हट जाते हैं। बाद में कोई मुँह दिखाने भी नहीं आता।' मैंने उनसे वादा किया कि मैं अंत तक उनका साथ दूँगा और हार-जीत की तो नहीं कह सकता, कभी उन्हें बीच में नहीं छोड़ूँगा। उनकी हार मेरी ही हार होगी। उनके यह कहने पर कि चुनाव के लिए उनके पास पैसे नहीं हैं, मैंने चुनाव का सारा खर्च स्वयं करना स्वीकार किया। इस प्रकार उन्हें तैयार करके मैंने उन्हें प्रत्याशी बना दिया और स्वयं उनका एजेंट बन गया। कांग्रेस की ओर से तो सरदार लतीफुर रहमान को पुनः प्रत्याशी बनना ही था। चुनाव-अभियान प्रारंभ होते ही मैं जी-जान से इसमें जुट गया। मैंने अपनी कार निकाल ली और स्वयं घूम-घूमकर प्रचार करने लगा। श्याम वर्थवार की लंबी तपस्या की पूँजी मेरी सहायक थी। मेरा घर तो शहर के मध्यभाग में था ही। उसमें माइक फिट कर के चुनाव का दफ्तर स्थापित कर दिया गया। कार्यकर्ताओं की भीड़ लग गयी। सभी स्वेच्छा से बिना पैसों की कामना किये मेरी त्यागवृत्ति से प्रभावित होकर आ जुटे थे। मैं अपने लिए तो कुछ कर नहीं रहा था। एक त्यागी और कांग्रेस द्वारा उपेक्षित पूर्व क्रांतिकारी देशसेवक को विधानसभा की सदस्यता दिलाने के लिए इतना प्रयास कर रहा था जिनके चुने जाने पर भी मुझे कोई लाभ नहीं मिलनेवाला था क्योंकि सरकार तो कांग्रेस की ही बननी थी जिसके विरुद्ध वे चुनाव में खड़े हुए थे। सरदार लतीफुर रहमान ने सपने में भी नहीं सोचा था कि उसके विरुद्ध इतना प्रबल जनमत संगठित हो जायगा। उसकी चिंता बढ़ाने को कांग्रेस का एक असंतुष्ट गुट भी छिपे रूप से मुझसे आ मिला था।

एक दिन नगर कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष कुमार झा, जो हमारे परिवार से संबंधित थे, मुझसे एक चायघर में बोले 'तुमने अपने घर में कांग्रेस के विरुद्ध किलेबंदी कर रक्खी है। यह अच्छी बात नहीं है।' मैंने कहा, 'लोकतंत्र में यह अधिकार सभी को है कि निर्भीक होकर चुनाव में भाग लें। मैं कांग्रेस के विरुद्ध खड़े श्याम बर्थवार का चुनाव-एजेंट हूँ इस लिए उनके पक्ष में जनमत संगठित करने की मुझे पूर्ण स्वतंत्रता है।' कुमार झा बोले, 'तुम्हारे सारे प्रयत्न व्यर्थ हैं। यदि कांग्रेस हार जायगी तो मैं अपनी मूँछ मुड़ा लूँगा।' मैंने कहा, 'मूँछ तो आपने पहले से ही मुड़ा रक्खी है परंतु मैं यह घोषणा करता हूँ कि यदि श्याम बर्थवार हार जायँगे तो मैं इस शहर में आगे मुँह नहीं दिखाऊँगा।' चायघर में मेरे कई मित्र और कांग्रेस पार्टी के बहुत से सदस्य बैठे थे। मेरी यह घोषणा आग की तरह सारे नगर में फैल गयी। अब श्याम वर्थवार की हार-जीत का प्रश्न केवल उनकी हार-जीत का प्रश्न नहीं रह गया था, इसमें मेरी प्रतिज्ञा भी जुड़ गयी थी। मेरी प्रतिष्ठा का प्रश्न तो यह प्रारंभ से ही था, मेरी इस प्रतिज्ञा ने उसे एक मूर्त रूप दे दिया। कार्यकर्ताओं ने इसका राजनीतिक लाभ उठाने की गरज से इसे खूब प्रचारित भी कर दिया और दो-तीन दिन के भीतर मेरी यह घोषणा भी चुनाव का एक मुद्दा बन गयी।

मैंने इस चुनाव अभियान में महात्मा गाँधी के सत्य-अहिंसा के सिद्धांतों का प्रत्यक्ष अनुभव किया। प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में सत्यासत्य-निर्णय करने की शुद्ध विवेक-बुद्धि रहती है। उसका पढ़ाई-लिखाई से कोई संबंध नहीं होता। किसीके अंतर के भावों की शुद्धता-अशुद्धता दीर्घ काल तक छिपी नहीं रहती। अंग्रेजी में एक कहावत है

You can fool some people for all time
all people for some time
but you can't fool all people for all time

इस सत्यासत्य-निर्णायक विवेक-बुद्धि को प्रचारतंत्र द्वारा ढँकने की चेष्टा की जाती है जो कभी-कभी सफल भी हो जाती है। पर वह सफलता दीर्घकाल तक नहीं ठहरती। **उघरहिं अंत न होहिं निबाहू** के अनुसार अंत में सत्य लोगों की दृष्टि में आ ही जाता है।

मैंने श्याम वर्थवार के पक्ष में जब झंडा खड़ा किया था तो मैं बिल्कुल अकेला था और मेरे सम्मुख विरोध में थी प्रादेशिक और केंद्रीय कांग्रेसी हुकूमतें जिनके नेता थे पं. जवाहरलाल नेहरू जैसे असाधारण रूप से जनता के प्रियपात्र

राजनीतिज्ञ। परंतु मेरी भावना शुद्ध थी और उसमें स्वार्थ की तनिक-सी भी गंध नहीं थी। देखते-देखते सैंकड़ों कार्यकर्ता मेरे सहायक रूप में आ गये। कांग्रेस के पास भाड़े के टट्टुओं के सिवा एक भी आंतरिक निष्ठा से प्रेरित कार्यकर्ता नहीं था। उसकी भाड़े की जीपें शहर में दिनरात दौड़ती रहती थीं और उन पर कांग्रेस का तिरंगा झंडा भी लहराता रहता था परंतु उन पर बैठे व्यक्ति शहर के प्रमुख बाहुबली ही रहते थे। कभी-कभी कांग्रेसी जीपें कलाली (ताड़ीखाने) के बाहर भी लगी दिखाई देती थीं जब उनपर बैठे तथाकथित कांग्रेसी कार्यकर्ता शराबखाने में अपनी दिनभर की थकान मिटाने को शराब की बोतलें खाली करते रहते थे। इधर मैं अपनी मोटर पर प्रतिदिन दूर-दूर मुहल्लों में जाकर लोगों को अपना संदेश सुनाता था कि किस प्रकार कांग्रेस ने शहर की लोकप्रिय नगरपालिका को 5-7 वर्षों से भंग कर रक्खा था और किस प्रकार श्याम वर्थवार जैसे त्यागी व्यक्ति के विरोध में एक पुराने मुस्लिम लीगी को पुनः शहर के प्रतिनिधित्व का भार सौंपने का निश्चय कर लिया है। वह व्यक्ति भी ऐसा था कि पिछली बार एम. एल. ए बनने के बाद पाँच वर्ष में एक बार भी शहर में उसकी सूरत नहीं दिखाई दी थी। मेरी बातों का समर्थन जनता तालियों की गड़गड़ाहट से करती थी। पाँच वर्षवाली बात पर तो एक मनोरंजक चुटकुला भी प्रचारित हो गया था। सरदार लतीफुर रहमान, जो जनता का मेरे पक्ष में प्रबल जमाव देखकर पराजय की आशंका से मुहल्ले-मुहल्ले घूमने लगे थे, एक गरीबों के मुहल्ले में पहुँचे जहां बड़ी गंदगी थी। उन्होंने नाक पर रुमाल रखकर कहा, 'क्या यहाँ मेहतर नहीं आता है।' इस पर पास खड़े एक व्यक्ति ने उत्तर दिया, 'जी, केवल 5 वर्ष में एक बार आता है।'

चुनाव-प्रचार के दूसरे दौर में सरदार लतीफुर रहमान ने पैसे लुटाने शुरू किये। यह तो स्पष्ट था कि केवल मुस्लिम वोटों के सहारे वे विजयी नहीं हो सकते थे क्योंकि गया नगर में मुस्लिम वोट 12-13 प्रतिशत से अधिक नहीं थे। उसमें भी मुझे सूचना मिली थी कि 1961 में कोई इस प्रकार का आंदोलन गुप्त रूप से मुसलमानों में उठ खड़ा हुआ था कि वे कांग्रेस को वोट न दें। जनसंघ नामक हिंदू-बहुल पार्टी को तो वे वोट दे नहीं सकते थे अतः उनका झुकाव स्वतंत्र रूप से खड़े मेरे प्रत्याशी श्याम बर्थवार की ओर ही था। मैं जब मुस्लिम मुहल्लों में जाता तो जिस उत्साह और प्रेम से मेरा स्वागत होता उससे मुस्लिम वोट पाने का मेरा विचार दृढ़ होता जा रहा था। मैंने बिना किसी भेदभाव के गरीब मुसलमानों के मुहल्ले में बहुत सुधार भी किये थे। सरदार ने, जो अपने

विरुद्ध जनमत से घबरा गये थे, कितने ही मुहल्लों में जीर्ण-शीर्ण मंदिरों की मरम्मत के लिए रुपये आवंटित करने प्रारंभ किये। मुझे इसकी सूचना मिलने पर मैंने इसका स्वागत किया और लोगों को रुपये लेने में किसी प्रकार का असमजंस न करने की सलाह दी। बस, वोट केवल उन्हें श्याम वर्थवार को देना था। मैंने अपने साढ़े तीन वर्षों के ज्वायंट वाटरवर्क्स के कार्यकाल में प्रायः तीन हजार घरों में परिवार के लिए और पाँच-छ सौ मुहल्लों में सड़क पर जनसाधरण के लिए पानी के नये कनेक्शन दिये थे जिनके लिए लोग वर्षों से दौड़ते रहे थे। मेरे पहले पानी कनेक्शन पाने के लिए लोग पाँच-पाँच सौ रुपये घूस देने को तैयार रहते थे, यह मैंने सुना था। यों तो सरकार द्वारा तिगुने-चौगुने बढ़ाये गये टैक्स को कम करना और शहर में गोवध बंद करवा देना भी मेरी लोकप्रियता के कारण थे, परंतु जन-साधारण को, बिना हिंदू-मुस्लिम के भेदभाव के, बिना एक पैसा भी खर्च किये पानी उपलब्ध कराना मेरी लोकप्रियता का सब से बड़ा कारण था। मैं जब गरीबों के मुहल्लों में जाता तो भीड़ मुझे घेर लेती और कहती, 'हमें कांग्रेस से या जवाहर लाल से कोई मतलब नहीं है। हम तो सुबह-शाम पब्लिक-नलों से जल भरते समय गुलाब बाबू की जयजयकार करते हैं।' मैं कहता, 'आज उसी जयजयकार की कीमत माँगने मैं आया हूँ क्योंकि कांग्रेसी सरकार ने 5 वर्षों से नगरपालिका का चुनाव नहीं करा कर शहर को तो एक प्रकार से नाबालिग बना ही रक्खा है, अब इसमें मेरी प्रतिष्ठा का भी प्रश्न जुड़ गया है।' जिन तीन हजार मध्यम श्रेणी के परिवारों में मैंने बिना एक पैसा खर्च कराये पानी के कनेक्शन दिये थे, उनके वोटों के लिए तो मैं पूर्ण रूप से आश्वस्त था ही क्योंकि इस बात का प्रचार होने पर कि चुनाव में मेरे प्रत्याशी की पराजय होने पर मैं शहर में अपना मुँह नहीं दिखाऊँगा, वे लोग अपना वोट मुझे अवश्य देंगे, ऐसी मेरी मान्यता थी।

एक विशेष बात और मैंने प्रारंभ कर दी। उधर सरदार रुपये बाँट रहा था, इधर मैंने लोगों से चुनाव के खर्च के लिए चंदे लेने शुरू कर दिये। रेलवे कॉलोनी में एक-एक आना प्रति व्यक्ति के हिसाब से जमा करके मुझे पचास रुपये चंदे के रूप में दिये गये। इसी प्रकार अन्य स्थानों से भी जनता ने चंदा-अभियान द्वारा पैसे इकट्ठे करके मुझे देने प्रारंभ किये। इसका लाभ यह हुआ कि यह जनता का चुनाव बन गया। जो व्यक्ति पैसे दे सकता था वह वोट भला कैसे नहीं देता! सरदार की ओर से जो कांग्रेसी प्रचारक घूम रहे थे, उन्हें लोगों ने भाड़े के टट्टू की संज्ञा दे दी। वे जितना अधिक पैसा लुटाते थे, उतनी अधिक

उनकी अप्रतिष्ठा बढ़ रही थी। मुहल्ले-मुहल्ले सभाएं होतीं जिनमें मैं श्याम बर्थवार को दिखाकर कहता, ऐसे त्यागी, स्वतंत्रता के लिए कालापानी की सजा काटनेवाले गरीब व्यक्ति के लिए कांग्रेस में जगह नहीं है और जिन्होंने मुस्लिम लीग में रहकर देश का विभाजन कराया और बाद में लाभ उठाने को कांग्रेस में घुस गये, उन स्वार्थी लोगों को पैसे के बल पर टिकट मिल रही है। वे जवाहरलाल की लोकप्रियता के नाम पर आपका वोट पा लेते हैं और आपके वोट को पाकर उसे अपनी लोकप्रियता का प्रमाण बता कर पुनः कांग्रेसी टिकट पा लेते हैं। इस दुश्चक्र को समाप्त होना चाहिए और ऐसे व्यक्तियों का पर्दा-फाश करके जवाहरलाल को सही स्थिति की जानकारी देनी चाहिए।' मेरे भाषण में श्याम वर्थवार की भोगी हुई जेल-यातना की बातें सुनकर लोगों की आँखे छलछला जाती थीं और प्रत्युत्तर में उठनेवाले जयघोष से मैं समझ लेता था कि मुझे उनका हार्दिक समर्थन प्राप्त है।

शहर का चुनाव मेरी प्रतिष्ठा का प्रश्न तो बन ही गया था, कांग्रेस ने भी इसे अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया था। गया जिले में 25 असेंबली की सीटें थीं। मैं अपने भाषण में कहता कि आप 24 सीटों में कांग्रेस को जिता दें। उनमें, चाहें तो कांग्रेस को वोट देकर जवाहरलाल के हाथ मजबूत कर दे परंतु शहर की प्रतिष्ठा को बचाने के लिए यहाँ कांग्रेस को हराकर यह बता दें कि शहरी सीट के लिए उनका चुना हुआ प्रत्याशी हमारा प्रतिनिधि नहीं हो सकता क्योंकि उसने पाँच वर्ष में शहर के लिए कोई काम नहीं किया है, यहाँ तक कि शहर की नगरपालिका का चुनाव भी नहीं होने दिया है। कांग्रेस की ओर से मुख्यमंत्री विनोदानंद झा शहर में आये और उन्होंने मुझे बुला भेजा। मुझे इसकी सूचना पहले ही मिल गयी थी अतः मैं घर से पूरे दिन बाहर रहकर एक गुप्त स्थान में छिपा रहा और उनके शहर से चले जाने के बाद ही दिखाई दिया। मेरी उस समय की लोकप्रियता का प्रमाण इसीसे मिलेगा कि एक पान की दुकानवाले ने भूल से मेरे पान में जर्दा दे दिया जिससे मुझे चक्कर आने लगा और मैं अपने घर में जाकर पलंग पर लेट गया। शहर में यह प्रचारित हो गया कि गुलाबबाबू को जहर दे दिया गया है। फिर क्या था, सैकड़ों व्यक्तियों ने उस पानवाले की दुकान को घेर लिया। उसकी दुकान लुट जाती इसके पहले ही वह गरीब भागा-भागा मेरे पास पहुँचा और मैं अस्वस्थ स्थिति में ही उठकर भीड़ में गया और लोगों को असली बात की जानकारी देकर शांत कर सका। उसकी दुकान

तो बच गयी परंतु मेरे कार्यकर्ताओं ने इस घटना का लाभ उठाकर वोट बैंक में तो वृद्धि कर ही ली।

अंत में कांग्रेस की ओर से इंदिरा गाँधी को शहर के चुनाव के लिए आना पड़ा। प्रायः पचास हजार की भीड़ उनका भाषण सुनने के लिए आयी। परंतु यहाँ भी भाग्य ने मेरा साथ दिया। पता नहीं किस कारण से लाउडस्पीकरों ने काम नहीं किया और इंदिराजी ने क्या कहा, यह कोई सुन नहीं सका। मेरी पत्नी तो भीड़ को देखकर ही हताश हो गयी और लौटकर बोली कि क्या कोई इस प्रकार की शहर छोड़ने की प्रतिज्ञा करता है! मैंने कहा कि मेरे प्रपितामह सदासुखजी भी तो मंडावा छोड़कर बिना रुपये के गया आये थे। वही रक्त तो मेरे अंदर भी प्रवाहित है। संपत्ति आ जाने से थोड़ा आरामतलब हो गया हूँ, बस इतनी सी बात है। भारत बहुत बड़ा देश है। किसी भी और जगह जाकर बस जायेंगे और नये सिरे से उद्योग करेंगे।

इंदिराजी की सभा से स्थिति में कोई परिवर्तन न पड़ता देखकर कांग्रेसवालों ने जवाहरलालजी को गया में बुलाने का निश्चय किया। उन्हें गया के हवाई अड्डे पर उतर कर बीस मील दूर एक देहात की सभा में प्रचार के लिए जाना था। गयावालों के लिए केवल हवाई अड्डे पर संदेश दे देना था। हवाई अड्डे पर केवल पाँच-सात सौ आदमियों को देखकर जवाहरलालजी का पारा गर्म हो गया। वे बिगड़कर बोले, 'क्या इतने-से व्यक्तियों के बीच में मैं बोलूँ!' कांग्रेस के अधिकारियों ने कहा, 'जी नहीं, आप के लिए कार्यक्रम में थोड़ा परिवर्तन करके नगर में ही बड़ी सभा रक्खी गयी है। आप की देहात की सभा निरस्त करके अधिक सुविधा की दृष्टि से यह हेरफेर किया गया है।' जवाहरलाल की सभा की शहर में पूरी तैयारी थी और शहर का बड़ा गाँधी-मैदान आदमियों से भर गया था। भीड़ पचास हजार से भी ऊपर थी। मैंने भी इस आँधी से मुकाबला करने के लिए गाँधी-मैदान के चारों कोनों पर चार गाड़ियों में माइक लगवा कर अपना लिखित प्रचार-संदेश पढ़ने के लिए पकड़ा दिया। जवाहरलाल ने मेरे प्रत्याशी की योग्यता और त्याग को स्वीकार करते हुए कहा 'असेंबली की सीट कोई तोहफा नहीं है कि त्याग के बदले में आप किसीको दे दें। कांग्रेस बहुत-सी बातों पर विचार करके सीट का आवंटन करती है।' जब जवाहरलाल अपना भाषण समाप्त करके मंच से नीचे उतर गये तो सरदार ने, जो सीढ़ियों पर बैठा था, उनसे कहा, 'लोकसभा के लिए बोट कांग्रेस को देकर विधानसभा का बोट

लोग मेरे विरुद्ध दें, ऐसा प्रचार है। आप इसका निराकरण कर दें।' जवाहरलाल पुनः मंच पर चढ़े और बोले, 'आपको कहा जा रहा है कि केवल लोकसभा के लिए वोट कांग्रेस को देना है, विधानसभा के लिए श्याम वर्थवार को वोट देना है। आप ऐसा नहीं करें। दोनों ही वोट कांग्रेस को दें।' जवाहरलाल के द्वारा मेरे प्रचार की सफलता की यह पुष्टि देखकर मुझे हँसी आ गयी। सभा के समाप्त होने पर चारों कोनों से निकली भीड़ को लक्ष्य करके मेरे कार्यकर्ता लाउडस्पीकरों पर प्रचार कर रहे थे ---

'भाइयो, जवाहरलाल की आँधी को सिर झुकाकर सिर पर से निकल जाने दीजिए। उनका हाथ मजबूत करने के लिए लोकसभा में तथा जिले के अन्य 24 स्थानों में कांग्रेस को जिताकर गया नगर की विधान सभा की सीट के लिए श्याम बर्थवार को वोट देने के आप अपने पूर्व निर्णय पर दृढ़ रहें।'

चुनाव संपन्न होने के बाद मुझे यह सूचना मिली कि नगरपालिका के संभा-भवन में रक्खे हुए बक्सों का ताला तोड़कर वोटों की हेराफेरी की जा सकती है। मैं गया के तत्कालीन जिलाधीश के पास गया और उनसे बक्सों के पास अपने कार्यकर्ताओं द्वारा भी निगरानी रखने की अनुमति माँगी जो उन्होंने सहर्ष दे दी। तीन चार दिन तक मेरे कार्यकर्ताओं ने दिनरात बक्सों की चौकसी रक्खी ताकि कोई उलटफेर न किया जा सके।

मतगणना के समय मैंने प्रत्याशी श्याम वर्थवार को तो मेरे घर पर छोड़ दिया और एजेंट के नाते स्वयं गणना-कक्ष में बैठा रहा। मतों की गणना में 9 हजार मत कांग्रेस को मिले थे और प्रायः 19000 मत वर्थवार को मिले थे। 3 हजार मत जनसंघ को प्राप्त हुए थे। मेरी विजय पर श्रीयुते चंद्रा साहब जिलाधीश ने बधाई देते हुए मुझे कहा, 'गुलाबबाबू, अब तो आप स्वीकार करेंगे कि बक्सों में किसी प्रकार की तोड़फोड़ नहीं की गयी है। मेरी बधाई स्वीकार करें।' मैं तो इसी हैरानी में था कि 9 हजार वोट काँग्रेस को कैसे मिल गये! कांग्रेस की जमानत जब्त होती तभी मेरी प्रतिष्ठा का सही मूल्यांकन होता। मेरी आँखों में दुःख से आँसू भर आये। मैंने कहा, 'गया शहर में 9 हजार व्यक्ति मेरा मुँह भी नहीं देखना चाहते हैं और आप मुझे बधाई दे रहे हैं!' जिलाधीश चंद्रा साहब ने हँसते हुए कहा, 'आप कवि हैं न ! आप इस विजय की महत्ता नहीं समझ रहे हैं और भावना में आ गये है। ये नौ हजार तो बैलों की जोड़ी के अंधे वोट हैं। देश में कांग्रेस की और जवाहरलाल की हवा होने के बावजूद आपकी विजय होना कोई छोटी-मोटी बात नहीं है। आप इसका महत्त्व बाद में समझेंगे।'

आज पुनः उस घटना का स्मरण करके मैं चंद्रासाहब की बात का महत्त्व समझ रहा हूँ कि सचमुच 1962 में जब कांग्रेस अपनी पूरी लोकप्रियता पर थी और सभी स्थानों पर कांग्रेसी प्रत्याशियों की विजय हो रही थी, अपनी प्रतिष्ठा दाँव पर लगाने के कारण, इंदिरा गाँधी और जवाहर लाल के द्वारा स्वयं आकर संबोधित किये जाने के बावजूद, गया की जनता ने मेरे सम्मान की रक्षा की, यह कोई साधारण बात नहीं थी। श्याम वर्थवार तो इसके पहले भी विधान सभा के लिए खड़े हुए थे और उस समय उनकी जमानत जब्त हो गयी थी। उस समय तो उनका त्याग और अधिक जनता की दृष्टि में था, यदि वही विजय का आधार माना जाता। इसलिए मैं तो यही मानता हूँ कि भगवान ने मेरे आत्मसम्मान की रक्षा की और गीता के अपने उस वाक्य को चरितार्थ किया ---

न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति। मेरे नगरपालिका के कार्यों ने मेरी प्रतिष्ठा की रक्षा की थी।

बाहर भीड़ में चुनाव-परिणाम की घोषणा होते ही हर्ष की लहर दौड़ गयी। लोग नारे लगाने लगे --

नेहरूजी को दे दो तार

कांग्रेस की हो गयी हार

मेरे घर पर बैठे श्याम वर्थवार के पास जब मैं पहुँचा तो हजारों की भीड़ ने हमें घेर लिया। नियंत्रण करने के लिए लगाये गये मेरे भवन के द्वार का कोलैप्सिबुल गेट तोड़ती हुई भीड़ भीतर घुस आयी और हमें अपने प्रेम की वर्षा से ओतप्रोत कर दिया। इस चुनाव की सब से बड़ी विशेषता थी कि मुस्लिम-बहुल-मुहल्लों में भी 95 प्रतिशत वोट, मुस्लिम प्रत्याशी को न मिलकर हमें मिले थे।

इस प्रकार पाँच वर्ष पूर्व कांग्रेसी हुकूमत ने गया नगरपालिका को भंग करके मुझे जो अपदस्थ किया था उसका प्रतिशोध मैंने ले लिया।

39

गया नगरपालिका तथा ज्वायंट वाटर वर्क्स कमेटी के विविध अनुभव

नगरपालिका के मेरे शासन-काल में एक दो मनोरंजक अनुभव और हुए जिनकी चर्चा भी अप्रासंगिक नहीं होगी। यद्यपि उनमें कोई विशेषता नहीं है परंतु मेरे जीवन के लिए तो वे स्मरणीय हैं ही।

मैंने अपने भवन के उत्तरी भाग में एक नयी दुकान का निर्माण कराया था। उसके पीछे की दुकान में एक स्वर्णकार मेरा किरायेदार था जिसके आगे 3-4 फीट जमीन छोड़कर यह नयी दुकान बनी थी। अभी इसमें किवाड़ भी नहीं लगे थे कि पीछेवाले किरायेदार स्वर्णकार ने रातोंरात अपनी तिजोरी इसमें रख दी। सुबह मैं यह देखकर हैरान हो गया और मैंने समझौते की दृष्टि से उसे सुझाया कि एक दो महीने उसे अपनी दुकान के आगे की इस दुकान में रहने की मैं अनुमति दे सकता हूँ परंतु बाद में उसे यह स्थान छोड़कर या तो पीछे की दुकान से संतोष करना होगा या नयी जगह खोज लेनी होगी। यह मेरा मूर्खता से भरा प्रस्ताव था क्योंकि एक बार रह लेने के बाद उसे खाली कराना आसान नहीं होता परंतु मुझसे भी बड़ी मूर्खता उसने इस शांति-प्रस्ताव को अस्वीकृत करके, की। नगरपालिका के सैंकड़ों सफाई कुली तो मेरे हाथ में थे ही। मैंने दूसरे दिन भोर में कुछ कुलियों को बुलाकर उसकी तिजोरी दुकान के बाहर करवा दी। खबर पाते ही वह दौड़ा हुआ आया और मुझसे उलझ गया। मेरे निकट खड़े नगरपालिका के जमादार ने उसे दो-चार थप्पड़ लगाकर दूर हटा दिया। उसने मुझपर और नगरपालिका के उस जमादार पर मारपीट का और चोरी का मुकदमा दायर किया जो कई महीने चला और अंत में मैं ससम्मान निर्दोष घोषित हुआ। इसमें सबसे मनोरंजक बात तो यह थी कि मेरे वकील ने जो नगर के सब से प्रमुख फौजदारी वक़ील थे, उससे जिरह में यह कहलवा दिया था कि उसने पुलिस में मारपीट की और चोरी की सूचना घर से जाते समय पहले ही, थाने में दर्ज करा दी थी। समझ में आने पर बाद में उसने कहा कि इसकी रिपोर्ट

उसने बाद में भी करायी थी। परंतु घटना के पहले ही यदि कोई घटना की सूचना दर्ज करा देता है तो उसकी असत्यता में क्या संदेह हो सकता है!

दूसरी मनोरंजक घटना है मेरे बड़े पुत्र आनंद के संबंध में जो उस समय 4÷5 वर्ष का था। वह इस समय डाक्टर है और उसीके साथ अमेरिका में मैं रहता हूँ। वह एकाएक गुम हो गया। वह बगल के घर में खेलने गया था और वहाँ अंदर के कमरे में जाकर खेलता हुआ सो गया था। किसीको इसका पता नहीं था। जब वह बहुत देर तक दिखाई नहीं दिया और कहीं भी उसके होने का पता नहीं चला तो यह संदेह हुआ कि उसे नगरपालिका के मेरे विरोधियों ने गुम न कर दिया हो। फिर क्या था! सारे नगरपालिका के शिक्षक और वार्ड के जमादार आदि जिनकी संख्या मिल-जुलकर हजार से ऊपर होगी रेलवे स्टेशन, बस-स्टेशन आदि शहर के नाकों के स्थानों पर उसे खोजते हुए चक्कर लगाने लगे। शहर में आग की तरह अफवाह फैल गयी कि गुलाब बाबू के लड़के का अपहरण हो गया है। नगरपालिका में प्रायः 150 प्राइमरी स्कूल चलाये जाते है जिनके शिक्षकों की संख्या हजार से ऊपर है। मैं विनोद में कहा करता था कि मैं शहर में जब भी घूमते हुए कहीं दृष्टि फिराता हूँ तो मुझे एकाध नगरपालिका का शिक्षक चाय की दुकान पर बैठा दिखाई दे जाता है। नगरपालिका के जमादारों के साथ-साथ शिक्षकों ने भी नगर को छान मारा। परंतु अंत में चार-पाँच घंटे बाद मेरा पुत्र इन सब बातों से अनभिज्ञ, आँखें मलता हुआ बगल के मकान के अंदर के कमरे से बाहर आ गया और लोगों की साँस में साँस आयी।

एक छोटी-सी घटना और है जो मेरी कार्यप्रणाली को स्पष्ट करती है। मेरे भवन के सामने की सड़क के दूसरी ओर पच्चीस-तीस टीन की छतवाली मिठाई और चाय की दुकानें थीं। उनमें से एक में एक सिंधी शरणार्थी की मिठाई की दुकान थी। दुकानों के पास थोड़ी दूर सड़क पर सार्वजनिक नल था जिससे सभी हलवाई पानी लेते थे। उस शरणार्थी ने किसी युक्ति से बिना मेरी अनुमति के अवैध रूप से अपनी दुकान में प्राइवेट नल लगवा लिया। सूचना मिलते ही मैंने पानीकल के सुपरिंटेंडेंट को फोन किया। उसकी साँठगाँठ से तो यह हुआ ही था, परंतु उसने कहा कि उस दुकानदार ने मेरा नाम लेकर उससे यह काम करवाया था। मैंने क्रोध से कहा कि यह सरासर झूठ है और आदेश दिया कि उसका नल-कनेक्शन तुरत काट दिया जाय। सुपरिंटेंडेंट से सारी बात की सूचना पाकर वह दुकानदार मेरे पास आया और बोला कि वह नल मैं स्वयं

देख लूँ। मैं जब उसकी दुकान के पीछे नल देखने पहुँचा तो वह पाँच सौ रुपयों के नोट मेरी और बढ़ाने लगा और बोला कि नल कट जाने से उसकी इज्जत धूल में मिल जायगी। मैं उसे रुपयों की घूस देते देखकर ग्लानि में डूब गया। मुझे उसके साहस पर आश्चर्य हुआ। मैंने कभी यह कल्पना भी नहीं की थी कि कोई मुझे घूस देने की बात सोच भी सकता है। मैंने उसे अपना सामने का विशाल भवन दिखाते हुए कहा, 'तुम शरणार्थी बनकर आये हो और अपनी छोटी-सी दुकान के सामने इस चारमंजिले भवन के स्वामी को घूस देने का साहस कर सकते हो, यह मेरे लिए लज्जा की बात है। मैं नल तो दुकान में लगवा दूँगा परंतु एक बार कट जाने के बाद ही। मैं तुम्हारी दुकान में ही नहीं सभी दुकानों में नल लगवा दूँगा ताकि सभी चाय और मिठाई के दुकानदारों को सहूलियत हो जाय। तुम्हें इसके लिए घूस देने की बात नहीं सोचनी थी।'

अंत में उसकी दुकान का नल कटवाने के एक महीने के अंदर मैंने अपने सामने की हर दुकान में एक स्वतंत्र नल लगवा दिया जिसके कारण दुकानदारों को सहूलियत तो हो ही गयी, अपने मुहल्ले में मेरी प्रतिष्ठा भी बढ़ गयी।

अपनी आदर्शवादिता का एक उदाहरण और दूँ। मेरे अधिकार-ग्रहण के पूर्व के प्रायः चौबीस लाख रुपये गया की नल व्यवस्था को सुधारने के लिए सरकार द्वारा मिले हुए थे। मैं पहले बता चुका हूँ कि फल्गु नदी में लंबी दूर तक बालू को हटाकर पानी के कुंड बनाये जाते थे जिनसे पानी पंप किया जाता था और शहर में उसका वितरण किया जाता था। बरसात के दिनों में जब नदी में पानी की बाढ़ आती थी तो शहर का पानी, बहुत साफ किये जाने पर भी, मटमैला और अस्वच्छ रहता था जिससे कई प्रकार की बीमारियाँ भी फैलती थीं। शहर में प्रायः 20 प्रतिशत व्यक्ति फाइलेरिया के मरीज थे। किसी का हाथ फूला दिखाई देता था तो किसी का पाँव हाथी के पाँव जैसा दिखता था। उक्त संकट से शहर को मुक्त करने और बोरिंग कराकर भूगर्भ-स्थित पानी को उपलब्ध कराने की योजना के लिए वे रुपये आवंटित थे फल्गु नदी के अंदर, शहर के प्रत्येक भाग की सीमा के अंदर बोरिंग कराने पर पत्थर की चट्टान मिलती थी। अंत में नदी के उस पार बोरिंग सफल हुई जो हमारे बाग की जमीन का भाग था। मैं जमीन मुफ्त में देने को तैयार था। परंतु उस पार से पानी पाइप द्वारा इस पार शहर में कैसे लाया जाय यह विकट समस्या थी क्योंकि बने हुए यातायात के पुल पर से लाने की अनुमति देना जन-सेवा विभाग को स्वीकार नहीं था और नया पुल बनाना संभव नहीं था। अंत में गया नगर क्षेत्र से दूर

दक्षिण में दंडीबाग मुहल्ले में और उत्तर में रामशिला पहाड़ी के पास की फल्गु की रेती में, नीचे चट्टान नहीं मिलने से भूगर्भ-गत जल का अजस्र स्रोत मिल गया और यह समस्या हल हो गयी। परंतु उचित मात्रा में बढ़े हुए पानी का वितरण करने के लिए सारे पुराने पाइपों को बदलना आवश्यक था। इसके लिए 5-6 लाख रुपयों की राशि भी इस मद में बच गयी थी। मैंने कहा कि मेरे सामने की सड़क पर की पाइप-लाइन सब से अंत में बदली जाय यद्यपि शहर के सब से ऊँचे मकान इसी सड़क पर थे। अंत में परिणाम वही हुआ जो ऐसे आदर्शवाद का हुआ करता है। नगरपालिका और वाटरवर्क्स के एकाएक अधिकृत कर लिए जाने के कारण मेरे सामने की जल-वितरण करनेवाली पाइप-लाइन वैसी की वैसी ही रह गयी जबकि शहर के सभी भागों में पुरानी सँकड़ी पाइप-लाइन हटाकर नयी ज्यादा बड़े घेरेवाली लगा दी गयी। मेरे मुहल्लेवाले आज भी मेरे इस आदर्शवाद का परिणाम भुगत रहे हैं और प्रायः सभी को अपने घरों में ऊपर की मंजिलों में पानी चढ़ाने के लिए अलग से बिजली के मोटर-पंप लगाने पड़े हैं।

मुझे केवल यही संतोष है कि पानीकल-विभाग द्वारा जहाँ 12 लाख गैलन पानी प्रतिदिन वितरित होता था, वहाँ मेरे ही समय में पूर्ण हुई इस योजना के द्वारा 72 लाख गैलन पानी प्रतिदिन वितरित हो सका था और वह भी नदी के ऊपर की बालू को हटाकर जैसा-तैसा जल नहीं, भूमि के 60 फुट नीचे प्रवाहित निर्मल स्रोत का अत्यंत निर्मल जल।

अपने नगरपालिका के कार्यकाल के एक और महत्त्वपूर्ण कार्य का विवरण देकर मैं यह प्रकरण समाप्त करूँगा यद्यंपि वह कार्य उच्च आदर्शों से प्रेरित था परंतु उसमें अंत में मुझे विफलता ही हाथ लगी थी।

नगरपालिका में प्रायः चार-पाँच सौ झाड़ू देनेवाले कर्मचारी, मेहतर और अन्य चतुर्थवर्ग के हरिजन कार्यरत थे। उनकी तनख्वाह तो अच्छी थी ही, पति और पत्नी दोनों कमाते थे अतः महीने के अंत में मध्यमवर्ग के कर्मचारी को जितने रुपये मिलते थे उससे अधिक ही वे पीट लेते थे। परंतु इतनी कमाई करने के बाद भी उनके पास एक पैसा भी नहीं बचता था और उनका जीवन-स्तर अत्यंत निम्न श्रेणी का था। उनके आवास-परिसर में हम लोग खड़े होना भी गवारा नहीं कर सकते थे। न तो अलग-अलग पाखाने और जल-कल की सुविधा, न उनकी सफाई का समुचित प्रबंध। मुझे इस विषय में जाँच करने पर पता चला कि उनकी तलब का अधिकांश हर महीने के प्रारंभ में तलब बाँटते समय हमारे जमादार जो तलब बाँटते थे काट लेते थे। वे 25 प्रतिशत माहवारी

ब्याज की दर पर उनके अधिकांश पैसे पिछले महीने के कर्ज में काटकर फिर नये सिरे से, 20 प्रतिशत या 25 प्रतिशत माहवारी ब्याज की दर से उन्हीं रुपयों में से कुछ रुपये उन्हें पुनः कर्ज दे देते थे। यह दुश्चक्र बरसों से चला आ रहा था और कर्ज देनेवाले अब तक उनसे अपने प्रारंभिक कर्ज के एवज में बीसों गुने ब्याज वसूल कर चुके थे। और कर्ज देने वाले कौन थे! वे हमारे ही वार्ड के उनसे काम लेनेवाले दर्सों वार्ड के 20-25 कर्मचारी। एक और व्यक्ति भी जो उन सरकारी कर्मचारियों के साथ इस दुष्कृत्य में लिप्त था, वह था मेहतर यूनियन का प्रधानमंत्री और मेहतरों का एकछत्र नेता, जमनाकांत। वह स्वयं तो कर्ज लगा नहीं सकता था, कर्मचारियों के द्वारा लगाये जानेवाले कर्ज में हिस्सेदार था और इस प्रकार प्रतिमास यूनियन के चंदे उगाहने के अतिरिक्त और मोटी कमाई कर लेता था। मैंने यह निश्चय किया कि महीने के अंत में एकाएक सभी वार्डों के जमादारों को हटाकर मेहतरों को उनकी तलब का भुगतान सीधे दफ्तर के कर्मचारियों द्वारा कर दिया जायगा और मेहतरों से कह दिया जायगा कि तुम्हारा सारा पिछला कर्ज नगरपालिका चुकायेगी, तुम्हें एक पैसा भी पिछले कर्ज में किसी जमादार को या अन्य कर्ज देनेवाले को नहीं देना है। यह कार्य अत्यंत गुप्त ढंग से किया जाना था और इसको जाननेवाले थे केवल मैं, मेरे अन्यतम सहयोगी रामकिशोर प्रसाद जिनकी सूक्ष्म बुद्धि का वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ तथा स्वयं चेयरमैन राधामोहन प्रसाद जो मेरी प्रत्येक योजना में आँख मूँदकर सम्मिलित हो जाते थे। यद्यपि बोर्ड की मीटिंग में और स्थानीय पत्रिकाओं में उन पर मेरे नियंत्रण को लेकर गहरी फब्तियाँ भी समय-समय पर कसी जाती थीं, परंतु वे इससे कभी प्रभावित नहीं हुए थे।

इस योजना के अंतर्गत हमने गया के एस. पी. से तनख्वाहवाले दिन के लिए पुलिस की सहायता माँग ली और उस दिन सभी वार्डों के जमादारों को आफिस में बुलाकर बैठा लिया तथा आफिस के कर्मचारियों को तनख्वाह बाँटने का कार्य सौंप दिया, जिस कार्य को पहले हर वार्ड के जमादार अपने वार्ड के सफाई-कर्मियों के लिए करते थे और इस प्रकार ब्याज के रूप में उनकी तनख्वाह हड़प जाने का अवसर पा लेते थे।

जमादारों के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ने लगीं क्योंकि उनकी पूँजी तो डूब ही रही थी, आगे की आमदनी का रास्ता भी बंद हो रहा था। सब से दयनीय स्थिति थी सफाई-कर्मचारी-यूनियन के महामंत्री और सफाई-कर्मचारियों के सर्वमान्य नेता जमनाकांत की। मेरा यह कार्य सफाई कर्मचारियों के हित में था, इससे इन्कार

करना तो दूर, उसे तो इसका सहर्ष स्वागत भी करना था, परंतु अपनी पूँजी के नाश का और नियमित आमदनी के स्रोत के सूखने का उसे दुःख ही अधिक हो रहा था। उसकी दशा वही थी जिसके लिए गोस्वामीजी ने लिखा है --

चोर-नारि जिमि प्रकट न रोयी

मैंने सभी जमादारों से उनके बकाया कर्ज की लिस्ट माँग ली और उन्हें आश्वासन दिया कि उनके बकाया कर्ज की जाँच करके यदि वे अपना मूलधन ब्याज के रूप में नहीं पा चुके होंगे तो नगरपालिका से उन्हें उनका मूलधन चुका दिया जायगा। परंतु उन्हें यह चेतावनी और आदेश भी दे दिया गया कि किसी सफाई-कर्मचारी से वे एक पैसा भी वसूल करने की चेष्टा न करें। यदि ऐसा करेंगे तो उनकी नौकरी समाप्त कर दी जायगी और उन्हें अन्य प्रकार का दंड भी भोगना पड़ सकता है।

इस घटना के बाद कर्ज लगानेवालों की बकाया राशि की फेहरिस्त की जाँच करने पर वह कुल-की-कुल ब्याज की रकम दिखाई दी और नगरपालिका को एक पैसा भी उन्हें नहीं चुकाना पड़ा।

यद्यपि इस योजना से सभी सफाई-कर्मचारी ऋणमुक्त होकर अपनी मासिक आय को भोगने में समर्थ हो गये पर उनकी यह स्वतंत्रता अधिक दिनों तक नहीं चल सकी। मुझे यह सूचना मिली की तनख्वाह की कुल रकम वे हप्ते दो हप्ते में शराब और ताड़ी पीने में खर्च करके फिर कर्ज के लिए उन्हीं कर्जदाताओं के आगे मुँहमाँगे ब्याज की दर पर कर्ज लेने को हाथ पसारने लगे। यह सूचना मिलने पर मैंने निश्चय किया कि अगली बार उन्हें तनख्वाह के रुपयों का आधा भाग, नकद न देकर, अनाज के रूप में दिया जायगा। यह क्रम कई महीने चलता रहा परंतु इसके बाद सरकार से नगरपालिका को भंग करने की कुचेष्टा की खबर पाकर और शिक्षकों की हड़ताल में व्यस्त हो जाने के कारण मैं इस व्यवस्था को आगे नहीं चला सका। इसमें न तो मुझे सफाई कर्मचारियों के यूनियन के मंत्री जमनाकांत का ही हार्दिक सहयोग मिलता था, न स्वयं सफाई कमचारियों का, जो अपने हित-अनहित के विषय में दूर तक नहीं सोच सकते थे।

40

मेरे उद्योग एवं व्यापार

पहाड़ काटना

मैंने अपने जीवन में विविध प्रकार के व्यापारों की सूची दी है। उनमें से किसी एक व्यवसाय को भी सम्यक् रूप से चलाया जाता तो प्रत्यक्ष और उल्लेखनीय आर्थिक उन्नति की जा सकती थी परंतु घास पर उड़ती फिरती चिड़िया तो चोंच में समाने लायक घास ही पा सकती है। मेरे व्यापार के संबंध में एक-दो प्रयास तो इतने अद्‌भुत हैं कि उनका उल्लेख करना मनोरंजक तो होगा ही शिक्षाप्रद भी होगा और भविष्य में उस प्रकार के क्विक्सोटिक (दुस्साहसिक) उद्योग करनेवालों पर लगाम कसने में भी सहायक होगा। उन प्रयासों में से एक फरहाद की तरह पहाड़ काटने का प्रयास है। मेरे एक किरायेदार और अंतरंग व्यक्ति ने गया की एक पहाड़ी की तलहटी में 20 एकड़ जमीन ली थी। उन्होंने मुझे उसमें आधे का हिस्सेदार बनाकर खेती करने की सलाह दी। कृषि के प्रति मेरी स्वाभाविक दुर्बलता को भाँपकर उन्होंने मुझे इस कार्य में रुपये लगाने को राजी कर लिया। जमीन तो उन्होंने ले ली थी परंतु उस भूमि में जल पहुँचाने के लिए अर्थाभाव के कारण वे असमर्थ थे जिसके कारण उस पहाड़ी जमीन पर खेती करना संभव नहीं था। पहाड़ी की दूसरी ओर एक महंत का विशाल कूआँ था जिसमें मोटरपंप फिट करके जल पहाड़ी की दूसरी ओर की भूमि में ले जाने से सिँचाई की समस्या हल हो सकती थी। महंत ने इसकी अनुमति दे दी थी। 10 होर्सपावर की मोटर खरीदी गयी और प्रायः 1500 फीट पुराना पाइप खरीदकर पानी पहाड़ी की दूसरी ओर पहुँचाने का प्रयत्न किया गया परंतु पहाड़ी बहुत ऊँची थी और पानी ऊपर नहीं चढ़ पाता था। इस पर यह योजना बनायी गयी कि पहाड़ी के बीच से नहर काटकर पाइप बिछा दी जाय क्योंकि उस पार की जमीन तो कूएँ के समतल में ही थी केवल बीच की पहाड़ी ही बाधा बनी पानी को हम लोगों की भूमि तक पहुँचने से रोक रही थी। पहाड़ीं को बीच से काटना, कहने में जितना सुगम लगता है, करने में उतना ही कठिन था। यदि केवल मजदूरों की सहायता से ऐसा किया जाता तो जो खर्च आता वह सारी भूमि

के मूल्य से भी कई गुना अधिक हो जाता। अतः यह निश्चय किया गया कि डायनमाइट से पहाड़ी के बीच से पतली-सी नहर की तरह दरार बना दी जाय जिसमें से जल पाइप द्वारा दूसरी ओर पहुँचा दिया जाय। डायनामाइट को उपलब्ध करना भी कोई साधारण बात नहीं थी परंतु उसका भी अत्यधिक मात्रा में संग्रह कर लिया गया और पहाड़ को बीच से उड़ाने का कार्य विधिवत् आरंभ कर दिया गया। यह कार्य अवैधानिक और संकटपूर्ण था क्योंकि न तो पहाड़ी पर हमारा स्वामित्व ही था और न डायनामाइट का प्रयोग करने का ही अधिकार हमें प्राप्त था। बिना किसी प्रकार का विचार किये इस प्रकार का अवैधानिक और जोखिमभरा कार्य दिन दहाड़े करना मुसीबतें खड़ा कर सकता है और हमें जेल की हवा भी खिला सकता है, इसका हमने विचार भी नहीं किया। यह एक प्रकार से कानून को और सरकार को खुली चुनौती देना था। पड़ोस के गाँववालों ने समझा कि सरकार की ओर से पहाड़ी को बीच से उड़ाया जा रहा है। जो अधिक निकट से हमें जानते थे, वे समझते थे कि सरकार से अनुमति लेकर ही हम इस प्रकार का कार्य कर रहे हैं।

इस प्रकार यद्यपि वह पहाड़ तो बीच से काट दिया गया परंतु उस भू-स्वामी से मतभेद हो जाने के कारण मैंने उस योजना से हाथ खींच लिया।

पहाड़ की वह कटी हुई दरार मेरे मकान के ऊपरी तल्ले की छत से आज भी देखी जा सकती है जो फरहाद की तरह मेरे अथक उद्योग की साक्षी है यद्यपि वह उद्योग किसी शीरी का प्रेम पाने के लिए नहीं किया गया था अन्यथा काव्य का विषय बन जाता और मुझे भी फरहाद की तरह आदर्श प्रेमी घोषित करके कविगण मेरी शान में कसीदे लिखने लग जाते।

व्यापारिक कार्यकलाप

जिस प्रकार मैंने अपने मुकदमों से कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं और उनके लिए झेली हुई कठिनाईयों के बावजूद उन्हें अपने लिए श्रेयस्कर माना है, उसी प्रकार व्यापार में भी समय-समय पर आये आघात-प्रतिघात को मैं अपने जीवन के लिए वरदान मानता हूँ। बुद्धिमान पुरुषों को जीवन का सच्चा और व्यावहारिक प्रशिक्षण उन्हींसे मिलता है। संकट और विषम परिस्थितियाँ ही जीवन को लिखे जाने या पढ़े जाने योग्य बनाती हैं। बेंजामिन फ्रैंकलिन ने कहा है कि अगर तुम अमरता पाना चाहते हो तो या तो कुछ ऐसा करो जो लिखने योग्य हो या कुछ ऐसा लिखो जो पढ़ने योग्य हो। पहला काम करनेवाले महान राजनेता, साहसी वीरपुरुष, धर्मप्रचारक, समाज सुधारक, वैज्ञानिक, मानवता का हित

करनेवाले आविष्कारक, परोपकारी उद्योगपति आदि हुए हैं जब कि दूसरी श्रेणी में कवि, लेखक, दार्शनिक, विचारक आदि आते हैं। मैं पहले वर्ग में तो नहीं आ सकता परंतु दूसरे वर्ग के लिए आजीवन प्रयत्न करता रहा हूँ। साहित्य द्वारा, केवल लेखनी की सहायता से, बिना कुछ किये अमरता पाने की आकांक्षा करना, सुनने में तो आसान लगता है परंतु वह भी प्रथम वर्ग में गिनाये हुए किसी उद्योग से कम कठिन नहीं है। कवियों के लिए तो यहाँ तक कहा गया है -- **Poets are born, not made.** अर्थात् कवि जन्म से ही होते है, बनाये नहीं जाते।

मैं इस उक्ति में निहित सत्य का साक्षी हूँ। मैंने जो भी लिखा है, वह किसी प्रेरणा से ही लिखा है। वह कौन-सी शक्ति है, मैं नहीं कह सकता परंतु कोई विशेष शक्ति अवश्य है। मैं निरंतर अनुभव करता रहा हूँ कि मेरी अभिव्यक्ति में मेरे अध्ययन-मनन-चिंतन का बहुत सीमित सहयोग है। वह एक विशेष प्रकार की देन है जो मुझे जन्म के साथ ही मिली है। यही नहीं, वह अभी तक मेरा साथ दे रही है जबकि अधिकांश प्रतिभाशील कवियों की प्रतिभा आकाश में चमकनेवाली विद्युत् की तरह क्षणस्थायी होती है। बिरले ही कवि, शेक्सपियर, तुलसीदास, रवींद्रनाथ, प्रेमचंद, शरतचंद्र आदि के समान जीवन के अंत तक प्रतिभा के स्रोत की धारा प्रवाहित कर सके हैं। यह बात और है कि इससे उनके महत्त्व को कम नहीं आँका जा सकता। रचना की संख्या या निरंतरता श्रेष्ठता का मापदंड नहीं बन सकती। प्रतिभा के विस्फोट से रचित एक भी कृति कृतिकार को अक्षय यश दिलाने में समर्थ है। फिर भी बहुमुखी प्रतिभा के निरंतर बहते आवेग से सतत जो भाँति-भाँति की कलाकृतियाँ सर्जित होती रहती हैं, उनका भी अपना महत्त्व है। वे पाठक के लिए तो विविध वर्णों की बदलती हुई प्रकृति-छटा के समान विस्मयजनक और हर्षोत्पादक हैं ही, रचनाकार को भी आजीवन संतोष और सार्थकता की भावना से आप्लावित रखती हैं। प्रतिभा के स्रोत का सूख जाना कवि-जीवन की मृत्यु है। उसके बाद अभ्यासवश लिखते जाना वैसा ही है जैसा बंदर द्वारा अपने मृत बालक के शव को अपनी गोद में चिपकाये रखना। मैंने अनेक बार ऐसी स्थिति भोगनेवालों को देखा है और मुझे इस स्थिति से बचाये रखने की ईश्वर से प्रार्थना की है। मेरी काव्य-कृति **कस्तूरी कुंडल बसे** की कितनी ही रचनाएं मेरी इसी भावना को व्यक्त करती हैं। संभवतः इस भय से बचने के लिए ही मैं अपनी रचनाशैली, विषय और भाषा में समय-समय पर क्रांतिकारी परिवर्तन करता रहा हूँ। बीच धारा में नाव बदलते जाने का मेरा यह उपक्रम मेरे सृजन के लिए कितना सार्थक ओर श्रेयस्कर है इसका निर्णय तो इतिहास ही करेगा, मुझे उससे जो आनंद मिलता है उसके लिए महाकवि तुलसी के स्वर

में स्वर मिलाकर मैं यही कह सकता हूँ, **को जाने को जैहै जम्पुर, को सुरपुर परधाम को, तुलसी बहुत भलो लागत जगजीवन रामगुलाम को।** विविध काव्यानुभूतियों और तत्संबंधी अभिव्यक्ति के पीछे मेरा विविधआयामी जीवन भी हो तो आश्चर्य नहीं। राजनीति, व्यवसाय, साहित्य, इन तीनों में से प्रत्येक समग्र जीवन को लपेटने में समर्थ है। साहित्य संपूर्ण जीवन की आहुति चाहता है। राजनीति में मैंने समय-समय पर चंचुपात किया हे, व्यवसाय में निरंतर हाथ-पैर मारता रहा हूँ परंतु वह साहित्य की धारा ही है जिसमें मैंने आकंठ डूबने का प्रयास किया है। यदि मेरा जीवन इतना विविधतामय नहीं होता तो मेरी अनुभूतियों में भी वह विविधता और यथार्थता नहीं दिखाई देती जो मेरी समझ में, आज है। अपनी राजनीतिक गतिविधि में नगरपालिका के कार्यकाल की झाँकी मैं दे चुका हूँ। व्यवसायों को भी मैं एक के बाद एक उसी प्रकार बदलता रहा हूँ जैसे कोई अपने वस्त्र बदलता है। जो रोचक या किसी प्रेरणा से संबंधित मेरे व्यवसायेतर कार्य-कलाप हुए हैं, उनका विवरण भी मैं यथास्थान देता गया हूँ। मैं नीचे अपने व्यापारिक कार्यकलापों की तालिका दे रहा हूँ जिनमें से किसी एक में भी गहरे डूब कर निरंतर लगे रहने से लक्ष्मी की पूर्ण कृपा पा सकता था। परंतु मैंने व्यापार में कभी पूर्ण तत्परता या सातत्य नहीं दिखाया। मैं साहित्य-सर्जन में ही पूर्णतः समर्पित रहा हूँ। अतः व्यापारिक सफलता भी उसी परिमाण में मुझे प्राप्त हुई है। मैं इसीको ईश्वर की बहुत बड़ी कृपा मानता हूँ कि मुझे किसी भी व्यापार में कभी बड़ी हानि नहीं उठानी पड़ी। यहाँ पाठकों के मनोरंजनार्थ मैं उन व्यापारों के नाम गिना रहा हूँ जिन्हें मैं समय-समय पर अपना चुका हूँ। (1) **जमींदारी का लेखाजोखा तथा उसका प्रशासन, (2) कपड़े की थोक ओर खुदरा दुकानदारी का व्यापार, (3) यात्री-परिवहन-सेवा तथा ट्रक और टैक्सी-चालन, (4) सोने-चाँदी की दुकान चलाना और ब्याजू रुपये लगाना, (5) शेयर बाजार में शेयरों की लेवाबेची, (6) पावरलूम पर कपड़े का निर्माण कराना तथा उनका थोक चलान करना, (7) भवन निर्माण की ठेकेदारी, (8) होटल और रेस्तराँ का संचालन तथा (9) पुस्तक-प्रकाशन एवं विक्रय।** बदलते हुए इन सारे व्यवसायों के संचालन का समस्त भार मुझ अकेले को ही वहन करना पड़ा है क्योंकि दत्तक पुत्र होने के कारण अपनी संपत्ति और कार्यकलापों का एकमात्र उत्तरदायी मैं स्वयं ही था। मेरे पास छोटे या बड़े भाई के रूप में या किसी नातेदार-रिश्तेदार के रूप में भी कोई दूसरा सहायक नहीं था। साझेदारी से मैं प्रारंभ से ही बचता रहा हूँ। इन सब व्यापारों का बोझ वहन करते हुए हाइकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट तक चलनेवाले अपने लंबे-लंबे मुकदमों को भी मैं अकेला ही सँभालता रहा हूँ।

मैंने अपने चारों पुत्रों में से किसीको भी अदालत में पाँव भी नहीं धरने दिया है। मैंने प्रारंभ से ही यह समझ लिया था कि उन्हें वह पारिवारिक संपत्ति और प्रतिष्ठा विरासत में नहीं मिलनेवाली है जो सौभाग्य से मुझे मिली हुई है। उन्हें अपनी विद्या और उद्योगबल से अपना भविष्य बनाना है। अतः उन्हें अपनी व्यवसाय या मुकदमेबाजी की उलझनों में फँसाना उनकी शिक्षा की एकनिष्ठता में बाधा पहुँचाना होगा। उन्होंने मुझे निराश भी नहीं किया है। अपने भविष्य के निर्माण का सारा श्रेय उन्हें ही है। एक बात अवश्य है। अपने सबसे छोटे पुत्र को, उसकी आँखों की ज्योति दुर्बल होने के कारण और इस कारण से भी कि किसीको तो परिवार की व्यावसायिक परंपरा को आगे बढ़ाना और पारिवारिक संपत्ति को सँभालना ही चाहिए, मैंने मैट्रिक की पढ़ाई के बाद अपने बस व्यापार में लगा दिया था जिसके कारण वह चाहे विश्वविद्यालयी शिक्षा में अपने अन्य भाइयों की तुलना न कर सके, व्यापारिक सूझबूझ तथा परिश्रम में किसीसे भी कम नहीं है और मेरी कल्पना को मूर्त रूप देते हुए उसने गया की मेरी सारी संपत्ति को सँभाल रक्खा है। यदि वह किसी तकनीकी लाइन में पढ़-लिखकर सेवारत हो कर कहीं दूर चला जाता तो मैं इस स्वतंत्रता के साथ साल-साल भर का समय प्रतापगढ़ में और बाद में अमरीका में नहीं बिता सकता था। अब वह भी अमेरिका पहुँच कर जहाँ मेरे तीनों बड़े पुत्र डाक्टरी, इंजीनियरिगं, इंश्योरेंस और सोफ्टवेयर के काम में लगे है, एक बड़े प्रतिष्ठान का स्वामी बनकर अपने ज्येष्ठ पुत्र के साथ व्यापार में लग गया है।

टायरों की खरीद

अब मैं बहुत अधिक लाभ दिखानेवाले काम से सावधान रहने के संबंध में एक दो निजी अनुभव लिख रहा हूँ जो शिक्षाप्रद होने के साथ-साथ रोचक भी हैं।

बस-सेवा से संबंधित एक घटना है। एक व्यक्ति बस के दो नये टायर बेचने को मेरे पास लाया जिनका बाजार में मूल्य आठ हजार रुपयों से ऊपर था। चार हजार से मोल तोल-करता हुआ उन्हें दो हजार में मुझे देने को वह राजी हो गया। उसने प्रारंभ में सस्ते में बेचने का औचित्य दिखाने को एकाएक रुपयों की आवश्यकता आ पड़ने की बात कही थी। बाद में दोनों टायर दो हजार तक में देने को जब वह राजी हो गया तो मेरा माथा ठनका। मैंने अपने एक पुराने कर्मचारी को, जो इसका विशेषज्ञ था, बुलाकर जाँच करायी तो उसने टायरों को एकदम सही बताया और कहा, 'ये टायर चोरी के हैं इसीलिए आठ-नौ हजार की वस्तु वह दो हजार में दे रहा है।' मैंने उसे टायर वापस ले जाने को कहा।

परंतु मेरा सब से कनिष्ठ पुत्र, जो बस का काम देखता था, बोला, 'इस प्रकार का सुनहरा अवसर नित्य नहीं आता है। टायर का नंबर मिटा देने पर हमारी बस में लगे रहने पर यदि टायर चोरी के भी हों तो इसको कोई प्रमाणित नहीं कर सकेगा।' उसके अड़ जाने पर मुझे विवश होकर अपनी स्वीकृति देनी पड़ी क्योंकि मैं जानता था कि नहीं देने पर वह सदा इस 6 हजार के प्रत्यक्ष लाभ को छोड़ने के लिए मुझे अव्यवहारिकता का दोष देता रहेगा। यात्री-परिवहन की बस सेवा का पूरा कार्य उसीके जिम्मे था। प्रतिदिन दो सौ मील चलनेवाली बस-सेवा पर निगरानी करते हुए यात्रा करने का काम कोई सरल कार्य नहीं था। जिस प्रदेश में मेरी बस चलती थी वह भोजपुर प्रदेश मरने-मारने में विख्यात था और वहाँ सदा कुछ न कुछ संकट आता ही रहता था। ऐसे प्रदेश में वह पंद्रह-सोलह वर्ष का अल्पवय बालक होटल में खाते हुए और बस की छत पर सोते हुए हप्तों निकाल देता था। दिन भर खचाखच भरी हुई बस में कंडक्टरों पर निगरानी रखना, शाम को टिकट आदि का सारा हिसाब करना और भागते-दौड़ते बीच में पंद्रह-बीस मिनट के अवकाश में कच्चा-पक्का भोजन करना—इतना परिश्रम पैसे कमाने की इच्छा से ही वह करता था। ऐसी स्थिति में ये सरलता से आते हुए 6-7 हजार रुपये मेरे सिद्धांतों के कारण हाथ से निकल जाने का उसे कितना दुःख होगा, अपने मन की इस दुर्बलता से परास्त होकर, मैंने वह सौदा स्वीकार कर लिया। परंतु उसका जो परिणाम आया वह अशुभ होते हुए भी शुभ ही था। जब डिहरी ले जाकर उन टायरों में हवा भरी गयी तो वे रीम से बाहर उछल गये। हवा भरनेवाले ने बताया कि उनके निर्माण में दोष है जिसके कारण वे रीम में नहीं ठहर सकते, अतः जूता बनानेवाले उन्हें पाँच रुपयों में ले लें इसके अतिरिक्त उनका और कोई उपयोग नहीं हो सकता। मेरा पुत्र जब उदास होकर दूसरे दिन डिहरी से, जहाँ मेरी बस चलती थी, वापस आया तो मैंने उसे साहस बँधाया और कहा कि व्यापार में कभी-कभी इस प्रकार की ठगाई हो जाती है। इसके लिए दुःख करने से कोई लाभ नहीं है, इससे तो अनुभव लेना चाहिए। जिस वस्तु में इस प्रकार प्रत्यक्ष अत्यधिक लाभ दिखाई दे उसमें अवश्य कोई न कोई चाल छिपी है, यह सोचकर बहुत अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। दूसरे दिन डिहरी के निकट बक्सर नगर में गंगास्नान का मेला था। मेरे साहस बँधाने पर इस घाटे को पूरा करने की नीयत से गाड़ी में दूसरे टायर लगाकर मेरा पुत्र उसे मेले में ले गया और तीन दिन कड़ी मेहनत करके मेले से अढ़ाई हजार रुपये की अतिरिक्त कमाई करके लौटा। मैंने उसकी पीठ ठोकी और कहा 'अनायास, आकाश से फट पड़नेवाले धन की कामना न करके अपने पुरुषार्थ पर ही भरोसा

रखना कितना अच्छा होता है, यह तुम समझ गये होगे।' अपने मन में मैंने सोचा कि यदि मैं टायर लौटा देता तो दो हजार के घाटे से तो बच जाता, मेरे पुत्र की दृष्टि में अव्यावहारिकता का दोषी बनने से जीवन भर नहीं उबर पाता। टायरों की धोखेबाजी की कलई नहीं खुलने से यही समझा जाता की मैंने आते हुए 6-7 हजार के प्रत्यक्ष लाभ को अपनी आदर्शवादिता से खो दिया।

जाली नोटों का व्यापारी

1950 के आसपास की बात है, एक व्यक्ति मोटर में बैठकर मेरे पास आया और मुझसे बोला कि आप से कुछ गुप्त बातें करनी हैं। मैं उसे अपनी दुकान के अंदर के कक्ष में ले गया जहाँ उसने मुझे बताया कि वह सौ रुपयों के जाली नोट बनाता है। चूँकि मेरे भवन में सेंट्रल बैंक किरायेदार है जिसके खजांची भी मेरे चाचाजी हैं, वह उन नोटों को चलाने में मेरी सहायता चाहता है। हर सौ के नोट पर वह मुझे पचास रुपयों का मुनाफा देता जायगा अर्थात् सौ रुपये का नोट देकर वह मुझसे पचास रुपये ही लेगा। वह भी नोटों के चल जाने के बाद। वह पचास हजार के नोट मेरे पास छोड़कर चला जायगा और निकल चुके नोटों के मूल्य का अर्धांश लेने के लिए समय-समय पर आया करेगा, जैसा वह अन्य स्थानों पर करता है। परीक्षा के लिए उसने मुझे सौ-सौ के पाँच नोट पकड़ा दिये। कुतूहल-वश मैं उन्हें लेकर अपनी दुकान की बगल में, अपने ही भवन में स्थित सेंट्रल बैंक के खजाँची के पास जाकर उन्हें जाँचने को कहा। खजाँची ने खूब अच्छी तरह जाँचकर उन्हें सही बताया। मुझे विश्वास दिलाने के लिए उसने उन नोटों को बदलकर मुझे पाँच सौ के दस-दस के नोट भी दे दिये। इस प्रकार आश्वस्त हो जाने पर उस सज्जन या दुर्जन को पाँच सौ के दस-दस के नोटों की गड्डी पकड़ाते हुए मैंने दो घंटे के बाद आने को कहा ताकि इस संबंध में मैं अपना मत स्थिर कर सकूँ। जब वह लौटा तो मैंने कहा, 'श्रीमानजी, आपने गलत व्यक्ति का चुनाव किया है। मुझे ईश्वर ने पहले ही बहुत धन दे रक्खा है। उसके अतिरिक्त मैंने उससे भी बहुत अधिक बहुमूल्य, यश की संपत्ति अर्जित की है। इस प्रकार के अनैतिक पाप-कर्म में एक-न-एक दिन पकड़ा जाना अनिवार्य है और उस दिन मृत्यु भी उस दुःख और लज्जा की तुलना में श्रेयस्कर दिखाई देगी। आप कृपा करके तुरत यहाँ से चले जायँ। अतिथि के नाते मैं आपको पुलिस में नहीं देता हूँ, यही मेरी उदारता समझें। यदि दुबारा आप मुझे दिखाई देंगे तो विवश होकर मुझे पुलिस में सूचना देनी होगी।' वह व्यक्ति मेरे पास से तो तुरंत नौ-दो-ग्यारह हो गया परतु बाद में मुझे पता चला कि पटना नगर में एक प्रसिद्ध

धनिक को इस प्रकार के लोभ में फँसाकर, उसने दस हजार रुपये ठग लिये थे।

इतनी लंबी व्यापारिक यात्रा के पड़ाव लाँघकर मैंने विशेष अर्थोपार्जन न किया हो, कुछ जीवन के महत्त्वपूर्ण अनुभव अवश्य ग्रहण किये हैं जो इस प्रकार है :-

1. हिस्सेदारी या भागीदारी से यथाशक्ति बचना। प्रायः अस्सी प्रतिशत व्यापारिक साझेदारी विफल ही नहीं होती, जीवन में अशांति और कटुता भी बढ़ाती है।

2. जिस काम में प्रत्यक्षतः बहुत बड़ा मुनाफा दिखाई देता हो उसमें कोई न कोई छल होगा, यह समझकर उससे भरसक दूर रहना।

3. जिस अर्थोपार्जन में अपने बुद्धिबल, परिश्रम अथवा अपनी सामर्थ्य का उपयोग न होता हो उसकी कमाई से दूर रहना क्योंकि अंततः वह एक प्रकार का जूआ ही है चाहे उसे कोई भी नाम दिया गया हो।

4. किसी व्यापार में उतनी ही दूर तक खतरा उठाना जितनी दूर तक उसकी हानि को झेलने की शक्ति स्वयं में हो। लाभ और हानि को एक सिक्के के दो पहलू मानकर लाभ के लिए जी-तोड़ परिश्रम करते हुए भी हानि झेलने के लिए सदैव प्रस्तुत रहना।

शेयरों का व्यापार

मैं एक विवाह के सिलसिले में कलकत्ता गया था जहाँ से मुझे एक बारात में शामिल होना था। एक सज्जन उमराव प्रसाद आमेरिया से, जो मेरे परिवार से संबंधित थे, भेंट हो गयी और उनके कहने से मैंने 4-5 हजार रुपये के शेयर खरीद लिये। बारात से लौटने पर मुझे अपने रुपये दुगुने होकर मिल गये। फिर क्या था! लोभ को जगाने की लाभ से बड़ी कोई दूसरी वस्तु नहीं है। तुलसीदासजी ने भी लिखा है **जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।** मैंने शेयर की खरीद-बिक्री शुरु कर दी और चूंकि बाजार एक तरफा तेजी की ओर जा रहा था, मुझे लाभ ही लाभ होता गया। जिनमें व्यापार करने की प्रवृत्ति तो होती है परंतु व्यापार के लिए लगाने को पूँजी, तथा जिस अध्यवसाय, लगन और धीरज की आवश्यकता है, वह नहीं होती, वे फाटके के काम में लग जाते हैं। शेयर का काम स्पष्ट रूप से उद्योग में भागीदार बनने का काम है तथा इससे देश की सारी अर्थव्यवस्था संचालित होती है। परंतु फाटकेवाले इसे भी फाटके का रूप देने से बाज नहीं आये हैं। अपनी पूँजी को शेयरों में लगाना अप्रत्यक्ष रूप से देश-सेवा भी है क्योंकि वह पूँजी बैंकों में पड़ी मृत पूँजी न होकर देश के उद्योग को बढ़ाने में सहायक

होती है। पूँजीवाद की सारी अर्थव्यवस्था इसी पर आधारित है। मैं बता चुका हूँ कि मेरे परिवार में मेरे जन्मदाता पिता को छोड़कर किसीने फाटके की ओर दृष्टिपात भी नहीं किया था। मैंने शेयर को भी पूँजी-निवेश के रूप में ही ग्रहण किया था परंतु धीरे-धीरे त्वरित लाभ का चस्का लगने से उसका चस्का शराब की लत के समान बढ़ने लगा था। बड़बीघा गाँव के 18 हजार रुपये तो मेरे हाथ में थे ही, मैंने वह कुल राशि शेयरों में लगा दी और थोड़े ही दिनों में वह राशि बढ़कर 80-85 हजार के शेयरों के रूप में परिवर्तित हो गयी। उस समय तो यह पछतावा भी होता था कि रुपयों की संख्या और अधिक होती तो लाभ भी बहुत अधिक होता। यह विचार भी नहीं आता था कि उतनी ही अधिक हानि भी हो सकती थी। यह क्रम दो महीने चला होगा। बैंक में प्रायः एक लाख के शेयर जमाकर के मैं गया आ गया। मैंने उन पर बैंक से एक पैसा भी ऐडवांस नहीं लिया यद्यपि मैं उन पर प्रायः 70 हजार रुपये ऐडवांस ले सकता था। इस प्रकार मैं फाटका नहीं कर रहा था, विशुद्ध पूँजी का सदुपयोग कर रहा था। कलकत्ता में ही मेरे जन्मदाता पिता ने भी शेयर का कार्य प्रारंभ कर दिया था। परंतु वे मेरी तरह पूँजी लगाने भर से संतुष्ट न होकर उसे फाटके का रूप दे चुके थे। बढ़ते हुए बाजार में उन्होंने भी प्रायः दो-ढ़ाई लाख रुपये बना लिये थे परंतु अपनी उस पूँजी के बल पर उन्होंने प्रायः तीन लाख रुपये बैंक से प्राप्त करके और डेढ़ लाख के शेयर खरीद लिये थे। यह विशुद्ध फाटके का काम था। पूँजीनिवेश के शुभ कार्य को लोगों ने उस समय फाटके का रूप दे दिया था। इस आग को लगाने में बैंकों का पूरा हाथ था। एक रुपये की लागत से जब आप चार रुपये का सामान खरीद कर बढ़ते हुए भावों के बाजार में चौगुना लाभ कमा सकते हैं तो इस काम में पीछे कौन रहता! मैंने अपने पर संयम रक्खा था और समझता था कि यदि शेयरों के भाव गिरे भी और एक लाख के शेयर बीस हजार में भी बिकें तो भी मुझे घर से एक पैसा भी नहीं देना होगा। परंतु जो अपनी पूँजी से दुगुने शेयर बैंक के रुपयों की ताकत पर खरीदे हुए थे उनकी तो घाटा सहने की क्षमता शून्य के आसपास थी। यदि बाजार तनिक भी नीचे जाता तो उन्हें बैंक में रुपयों की आपूर्ति करनी होती और जब वे ऐसा नहीं कर पाते तो उनके शेयरों को बैंक नीलाम कर देती। इस जबरन नीलामी के कारण शेयरों का बाजार भाव और नीचे चला जाता और दूसरे सभी लोग भाव नीचे जाने से और संकट में पड़ जाते। यह नीचे गिरता हुआ दुश्चक्र उसके साथ ही अन्य सभी को लेकर डूब जा सकता था।

अंत में हुआ भी वही। कलकत्ता के हिंदू-मुस्लिम दंगे के कारण शेयरों का भाव एकाएक गिरा और गिरने के साथ उपर्युक्त पतनचक्र चालू हो गया। बैंकों के दिवाले निकलने लगे। यह स्थिति हो ही रही थी कि लियाकत अली ने, जो देश की अंतरिम स्वदेशी सरकार में प्रथम मुस्लिम लीगी अर्थमंत्री बन गये थे, अपना बजट उपस्थित किया जिसमें देश के उद्योगों पर 25 प्रतिशत का व्यापारिक लाभ नामक एक और अतिरिक्त टैक्स लगा दिया। पहले से रुपये में ग्यारह आने टैक्स तो लिमिटेड कंपनियों पर था ही, यह रुपये में चार आना टैक्स की दर और बढ़ जाने से रुपये में पंद्रह आने टैक्स हो गये। ऐसी स्थिति में शेयर होल्डरों के पास तो डिविडेंड या लाभांश के रूप में मात्र एक आना रह जाता। लियाकत अली के बजट से शेयरमार्केट में मौत का सन्नाटा छा गया। शेयर बाजार अनिश्चित काल के लिए बंद कर दिया गया। शेयर बाजार बंद हो जाने से एक लाभ यही मिलता था कि बैंक अपनी पार्टियों से गिरे हुए बाजार भाव को बताकर और रुपयों की माँग नहीं कर सकते थे। इसके पूर्व कलकत्ता के शेयर बाजार को ठंडा करने के लिए दंगों के अतिरिक्त एक परिस्थिति और उत्पन्न हो गयी थी। बंगाल में मुस्लिम लीग की सरकार थी। उसने पटसन के दाम पर से नियंत्रण हटा दिया था जिसके कारण पटसन जिससे जूट के बोरे तैयार होते थे, बहुत मँहगा हो गया था। उधर उद्योग-धंधों अर्थात् जूट की मिलों पर केंद्रीय सरकार का नियंत्रण था और उसने पटसन के बने जूट के बोरों पर मूल्य-नियंत्रण कर रक्खा था। इस विडंबना से पटसन का मूल्य उनसे तैयार किये गये बोरों के मूल्य से अधिक हो गया था और सभी जूट मिलें घाटे में चल रही थीं। कलकत्ते के शेयर बाजार में जूट की मिलों के शेयरों का ही बोलबाला था क्योंकि वही बंगाल का मुख्य उद्योग था। इस प्रकार कलकत्ता का शेयर बाजार, जो सारे भारत के शेयर बाजारों का मुखिया था, तिहरे संकट में फँसा था। हिंदू-मुस्लिम दंगा, पटसन और जूट के मूल्य में उल्टा हिसाब और उस पर यह लियाकत अली का बजट। वही बात हुई—

ग्रह-ग्रहीत, पुनि वातवस, तेहि पुनि बीछीमार
ताहि पियावहु वारुणी, कहहु कवन उपचार !

लियाकत अली का बजट रेडियों पर सुनते ही मुझे जो आघात लगा वह आज भी याद है। मैं सन्न रह गया। उसी क्षण मैंने निश्चय कर लिया कि बाजार खुलते ही जिस भाव पर भी शेयर बिकेंगे, बेचकर इस काम से सदा के लिए हाथ धो लूँगा। दूसरे दिन शेयर बाजार तो अनिश्चित काल के लिए बंद था परंतु ब्लैक मार्केट में शेयरों को चौथाई मूल्य पर भी कोई खरीदने को तैयार नहीं था। संध्या समय मैं शेयर मार्केट के नेता और भारत के प्रमुख अर्थपति मँगनीराम बाँगड़

के घर पर गया। वहाँ मृत्यु की-सी दहशत छाई हुई थी। बाँगडजी के पुत्र गोबिंद बाबू ने, जो मेरे और मेरे पिताजी के दलाल भी थे, मुझे ढाढ़स देते हुए कहा, 'आप घबड़ाइए मत, हमारे प्रतिनिधि दिल्ली में सरदार पटेल से मिले हैं, उन्होंने आश्वासन दिया है कि वे इस प्रश्न पर लियाकतअली से पूरी तरह लड़ेंगे और भारतीय उद्योगों को समाप्त करने के इस षड़यंत्र को सफल नहीं होने देंगे।' यहाँ गोबिंदबाबू से अपने संबंधों को भी बता दूँ जो मात्र व्यापारिक न होकर पारिवारिक-से थे। इससे भाग्य की विडंबना का भी पता चलेगा। गोबिंदबाबू के पिता मँगनीरामजी और मेरे फूफा भैरोंबक्सजी कलकत्ता में एक साथ दलाली करते थे और एक ही गद्दी में रहते थे। दोनों वैष्णव भक्त थे और रामानंदी टीका माथे पर लगाते थे। इसलिए आपस में अत्यंत प्रेमभाव था। उस समय मेरे फूफाजी की काफी संपत्ति बर्दवान में थी और आवश्यकता पड़ने पर मँगनीरामजी अपने पुत्रों को वहाँ छोड़ दिया करते थे ताकि कलकत्ता का व्ययभार कम हो। भाग्य का चक्र यह हुआ कि मेरे फूफाजी तो व्यापार में घाटा देकर हमारे यहाँ गया में हमारे आश्रित रूप में रहने लगे और मँगनीरामजी भारत के सब से बड़े उद्योगपति के रूप में उभर गये। 1946 में मेरे फूफाजी और मँगनीरामजी दोनों जीवित थे इसलिए मेरे प्रति और मेरे परिवार के प्रति मँगनीरामजी के पुत्रों की विशेष कृपा रहती थी अन्यथा उनके पास मेरे जैसे साधारण शेयरव्यापारी का पहुँचना भी कठिन था। शेयरबाजार बंद हो जाने से मैं गया लौट आया। मैंने लियाकतअली-बजट के दो-तीन दिन पूर्व बढ़ते हुए भावों में अतिरिक्त लाभ कमाने की आशा से प्राय 50-60 हजार के शेयर मौखिक रूप से एक दलाल की मार्फत और खरीद लिये थे। शेयरों के आते ही बैंक से रुपयों का भुगतान करके मुझे उन्हें लेकर बैंक में रख देना था। मेरे पास शेयरों का भाव गिर जाने के बाद भी इन नये खरीदे गये शेयरों का मूल्य चुकाने की क्षमता थी क्योंकि मैंने बैंक से एक लाख के शेयरों के बदले में रुपये नहीं ले रक्खे थे जब कि भाव गिर जाने पर भी मैं उन पर 25-30 हजार रुपये और ले सकता था। इसके साथ ही नये खरीदे हुए 50-60 हजार के शेयरों पर भी मुझे 30-35 हजार और मिल जाते। परंतु लियाकत अली-बजट के बाद परिस्थिति बदल गयी। बैंक से तो एक नया पैसा भी मिलने की अब आशा नहीं थी। 50-60 हजार के इन नये शेयरों का भुगतान करने की पूरी जिम्मेवारी मुझ पर ही आ गयी थी। मैं इसलिए भी गया लौट आया ताकि दो-तीन दिन में ज्यों ही शेयरों का मूल्य चुकाकर उन्हें उठा लेने का पत्र प्राप्त हो, उन्हें लेने के लिए 50-60 हजार रुपयों की रकम का प्रबंध कर सकूँ। वह रकम दो ही प्रकार से मिल सकती थी। या तो कोई संपत्ति बेचूँ

या स्वर्णाभूषण। संपत्ति तो इतनी शीघ्र बिक नहीं सकती थी, आभूषणों का ही एक मात्र सहारा था। गया आकर मैंने अपने और अपनी माँ के हिस्से के सारे आभूषण, जो अब मेरे हो गये थे, एकत्र किये और उन्हें काँटे पर फिर एक बार, एक साथ तौला। कुल 6 सौ भरी के आसपास थे। उस समय सोने का भाव करीब 80 रुपये तोले का था, अतः मैंने उसकी कीमत प्रायः पचास हजार आँक ली। मेरी पत्नी ने इस भीषण संकट की घड़ी में मुझे पूर्ण सहयोग दिया। तुलसीदासजी की वह उक्ति मुझे याद आयी—

धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी
आपतकाल परखिये चारी

परस्पर का प्रेम, पारिवारिक संस्कार और उच्चवृत्ति का परिचय ऐसे ही अवसरों पर मिलता है। सुख और समृद्धि में तो सभी अपने बने रहते हैं। मेरी पत्नी ने बिना एक क्षण की हिचक के सारे गहने मुझे सौंप दिये, यहाँ तक कि अपने नैहर से मिले आभूषण भी उनमें मिला दिये कि कम पड़ने पर वे भी सहायक हों। हाथ की सोने की चूड़ियाँ भी उतार कर दे दीं। यह मेरे जीवन की अविस्मरणीय स्मृति है।

परंतु, **जाको राखे साइयाँ, मार सके ना कोय**। मेरे पुण्य के खाते में जमा की राशि अधिक थी। जो अठारह हजार रुपये मैंने शेयरों में लगाये थे उनके मूल में मेरे स्वार्थ-त्याग और मानव-भावना की खाद पड़ी थी, जिसका वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ कि किस प्रकार चालीस और बाद में साठ हजार मिलनेवाले रुपयों का मोह छोड़कर मैंने गहलौर गाँव के मूल स्वामी के परिवार को बचाने के लिये उनके बदले में मात्र अपनी लागत के अठारह हजार रुपये लिये थे। शेयरों को उठाने के लिए वांछित रुपयों की ओर से निश्चिंत होकर मैंने वे सारे गहने तिजोरी में वापस रख दिये और परिस्थिति का पूरा जायजा लेने कोलकाता पहुँचा। शेयर बाजार के बंद हो जाने से मैं यह नहीं जानता था कि शेयरों को कब और कैसे उठाना होगा। वहाँ पहुँचने पर मुझे ज्ञात हुआ कि परिस्थिति मेरे सोचने की अपेक्षा बहुत अधिक गंभीर हो चुकी थी। लियाकतअली-बजट के परिणाम-स्वरूप चालीस नये बैंक फेल हो गये थे जो बरसाती मेढ़कों की तरह शेयर बाजार की तेजी के कारण नये-नये उत्पन्न हो गये थे। जिस दलाल की मारफत मैंने शेयर खरीदे थे उसका प्रतिष्ठान भी खरीदे हुए शेयरों का भुगतान न कर सकने के कारण दिवाले में चला गया था और उस पर अदालत ने रिसीवर बैठा दिया था। मैं उस फर्म के कर्मचारियों के पास गया, जो सभी मेरे परिचित थे, और मैंने कहा, 'पचास-साठ हजार के शेयरों का भुगतान तो मुझे भी करना है। मेरे मौखिक

आदेश पर जो शेयर खरीदे गये हैं, उनका रिसीवर को पता न भी हो, मुझको तो है ही। यह मेरा नैतिक दायित्व है कि उन शेयरों का भुगतान मैं करूँ।' कर्मचारियों ने हँसकर मुझे कहा, आप की धर्मभावना से उस फर्म का क्या भला होगा! पचासों लाख के घाटे में यदि पचास हजार मिला दिये जायँगे तो पावनेदारों को रुपये के चार आने की बनिस्बत चार आना एक-आध पाई और मिल जायगी। हमारे फर्म का उससे क्या भला होगा जिसके प्रति आप अपने को नैतिक दृष्टि से उत्तरदायी मानते हैं! जाइए, अपने बचे-खुचे शेयरों को बेचकर आनंद मनाइए।'

मैं कोलकाता से आश्वस्त होकर गया लौट आया और जो गहने मैंने समझ लिए थे कि मुझे होम कर देने होंगे, उन्हें पुनः एक बार सँभाल कर यथास्थान रख दिया। मेरी स्वर्गता माता ने मुझे जैसे इस बार स्वेच्छा से वे उपहार में दे दिये थे। मैंने 40 हजार रुपये के बदले 18 हजार रुपये लेकर जो गाँव वापस उसके स्वामी के लिए छोड़ दिया था, उस शुभकार्य की महत्ता भी मेरे सामने प्रकट हो गयी। एक तो मैं जीवन भर के दंश से मुक्त हो गया, दूसरे यदि मैं चालीस हजार रुपये और, शेयरों के त्वरित लोभ के वशीभूत होकर, उनमें लगा देता तो मेरा घाटा भी उसी परिमाण में अधिक होता। यह 50-60 हजार की अतिरिक्त खरीद भी मैंने भाव बढ़ने की आशा से फाटके की वृत्ति से की थी। इसका परिणाम भी भुगतने से भगवान ने मेरी रक्षा की। इससे भी मैंने पदार्थपाठ यही सीखा कि त्वरित लाभ की दृष्टि से किया हुआ ऐसा कार्य जिसमें व्यक्ति की शारीरिक या बौद्धिक शक्तियों का उपयोग न होता हो, जूआ ही है। जहाँ तक शेयरों में लाभांश की दृष्टि से रकम लगाने का प्रश्न है, वह शुद्ध व्यापार है और उसमें घाटे की आशंका रहने पर भी वह उचित और करने योग्य है। परंतु अपनी क्षमता से अधिक, बिना माल उठाये केवल खरीद-बिक्री की मूल्यराशि का जिसमें भुगतान होता हो, वह कार्य तो जूआ ही कहा जायेगा चाहे उसे कोई भी नाम दे दिया जाय। जो जूआ खेलते हैं, वे किसी भी काम को जूए का रूप दे सकते हैं। राजस्थान के गाँवों में मेह बरसने के सौदे होते हैं। अमरीका में और अब भारत में भी फुटबॉल और क्रिकेट के खेलों में हार-जीत के दाँव पर लाखों-करोड़ों का वारा-न्यारा हो जाता है। परंतु सात्विक रुचिवाले व्यक्तियों को, जो शांति और संतोष से जीवन बिताना चाहते हैं, इससे दूर ही रहना चाहिए। मैंने पहले जो शेयर खरीद रखे थे वह तो इन्वेस्टमेंट अर्थात् लागत या व्यापार में लगायी हुई पूँजी थी, जो मेरे रुपयों के अनुसार थी, परंतु दुबारा मैंने 50-60 हजार के शेयर, बिना रुपयों के, फाटके की तरह बैंक के रुपयों के भरोसे लिये थे जिसके दुष्परिणाम से भगवान ने मेरी रक्षा की थी और मुझे आगे के लिए शिक्षा दी थी।

अपने आभूषणों के बच जाने की इस कथा के बाद अब संक्षेप में आगे की बात बताता हूँ। 15 अगस्त 1947 को भारत के स्वतंत्र हो जाने की संभावना से शेयर बाजार जून में बड़ी ही उत्साहपूर्ण तेजी की मनःस्थिति से खुला। मैं अपने निर्णय के अनुसार बाजार खुलने की तिथि की सुबह में गोबिंदबाबू बाँगड़ के पास पहुचा और मैंने उनसे कहा, 'मेरे और मेरे पिताजी के कुल शेयर आज ही बेच दीजिए।' गोबिंद बाबू बोले, 'पागल हुए हैं क्या! हिंदुस्तान आजाद होनेवाला है। राजनीतिक परिस्थिति सुलझ गयी है। अब तो भाव ऊँचे ही ऊँचे जायँगे। बुरे दिन तो बीत गये।' मैंने कहा, 'मैंने प्रतीज्ञा की थी कि जिस दिन शेयर बाजार खुलेगा, कुल शेयर बेच दूँगा। मेरे पिताजी के शेयरों की भी जिम्मेदारी मुझी पर है अतः मैं एक दिन भी और उन्हें नहीं रख सकता। आप मेरे और उनके कुल शेयर आज ही बेच दें।' गोबिंद बाबू थोड़ा झल्लाकर बोले, 'ठीक है, मेरा कहा नहीं मानते हैं तो मैं आज ही आपके सारे शेयर बिकवा देता हूँ। मैं तो आपके भले की ही राय दे रहा था।'

शेयरों की बिक्री से, भारत के स्वतंत्र होने की आशा से, थोड़े बढ़े हुए भाव के कारण मेरे कुल शेयर बिकने के बाद, भी मेरे पास प्रायः पचास हजार रुपयों की पूँजी बच गयी। अर्थात् व्यापारिक ढंग से पूँजी-निवेश की दृष्टि रखने के कारण इतनी उथलपुथल के बाद भी मेरी 18 हजार की रकम प्राय तिगुनी बच गयी थी। यही नहीं, सौभाग्य से रुपयों की बढ़त के समय मैंने अनमने भाव से अपनी बस सर्विस के लिए एक नयी बस भी 6 हजार रुपयो में खरीद ली थी जिसने बाद में मेरी गृहस्थी के पूरे बोझ को सँभाल लिया था। परंतु मेरे जन्मदाता पिताजी ने प्रायः चार लाख के शेयर बैंक की 70 प्रतिशत अग्रिम राशि का लाभ उठाकर खरीद रक्खे थे। उन्हें कुल शेयर बेचने के बाद प्रायः पचास हजार रुपये बैंक को और चुकाने थे। मैंने अपने खाते की कुल रकम उनके खाते में डलवाकर इस संकट से उन्हें छुटकारा दिला दिया अन्यथा बैंक अपने शेष रुपयों के लिए उनके हिस्से के मकान की कुर्की करवाता। पिताजी की आँखों में आँसू आ गये। बोले 'गुलाब, मेरे पास रुपयें आते ही मैं यह रकम चुका दूँगा।' मैं जानता था कि यह केवल भावना की बात है। रुपये कोई आसमान से तो बरसेंगे नहीं। उनके पास बस के व्यापार में मेरे और मेरे ताऊजी के साथ 1/3 हिस्सा भर बस-व्यापार के नाम पर था जिससे कुल खर्चा चलाना था। मैंने कहा, 'मुझे गोद देते समय, मेरी माँ ने आपको जो कहा था उसे याद कीजिए। प्रथम पुत्र के मोह के कारण आपको गोद देने में हिचकिचाते देखकर क्या माँ ने नहीं कहा था कि गुलाब एक महात्मा के आशीर्वाद से जन्मा है। यह साधारण बालक नहीं है।

बुढ़ापे में यह आपकी सेवा से मुँह नहीं मोड़ेगा। आप उसे गोद देने से मुँह मत मोड़िए!'

इस प्रकार इस शेयर के व्यापार का अंत हुआ। मेरे मन में इस घटना के बाद कभी शेयरों में रुपये लगाने का विचार भी नहीं आया। मैंने थोड़ा-सा जिस त्याग-भावना का परिचय 18 हजार रुपये लेते समय दिया था और जिस त्याग में मेरा नहीं, मेरे पिताजी का ही श्रेय था, उसका पुरस्कार मुझे कितने अधिक रूप में मिला है, इस बात को सोचकर मैं लज्जा से अपना सिर नहीं उठा पाता हूँ। उसे मैं भगवान की अहैतुकी कृपा ही मानता हूँ। **ऐसो को उदार जग माहीं, बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर, रामसरिस कोउ नाहीं।**

बस की कन्याकुमारी की यात्रा

उन विविध व्यापारों में, जिनमें मैंने भाग लिया है, केवल कुछ की ही चर्चा इन संस्मरणों में की जा सकती है। मैंने इन संस्मरणों में ऐसी ही घटनाओं, चरित्रों और व्यापारों को छुआ है जिनका या तो ऐतिहासिक या साहित्यिक महत्त्व है, या जो अत्यंत रोचक हैं अथवा जिनमें साहित्यिकों की या मेरे परिवार की दिलचस्पी हो सकती है। कुछ ऐसे भी प्रसंग हैं जो इस ग्रंथ की सरसता, एवं पठनीयता में वृद्धि कर सकते है। इसके साथ ही कुछ ऐसे हैं जो अक्षरशः सत्य होते हुए भी उपन्यास का आनंद देंगे। बहुत से ऐसे भी मेरे जीवन के प्रसंग हैं जिनसे अनुभव ग्रहण किया जा सकता है या प्रेरणा प्राप्त हो सकती है। अब मैं अपनी बस यात्रा के एक अन्य रोचक प्रसंग का वर्णन करने जा रहा हूँ।

मेरी यात्री-परिवहन की गया से रामगढ़ तक की बस लाइन बिहार सरकार द्वारा उस मार्ग का राष्ट्रीकरण करने के कारण 1953 में समाप्त कर दी गयी थी। उसके बाद दैवी सहायता से चमत्कारिक घटना-क्रम से किस प्रकार डेहरी से कर्मनाशा और बाद में उसके मार्ग में वृद्धि करके विक्रमगंज से कर्मनाशा की जन-परिवहन-सेवा पुनः मुझे प्राप्त हुई थी, उसका वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ। मेरी बस जो कर्मनाशा से विक्रमगंज जाती थी उसमें बीच में प्रायः दस बारह थाने पड़ते थे जिनके दरोगा और मुंशी को मुझे प्रसन्न रखना होता था। इसके अतिरिक्त सोनभद्र से निकली हुई नहरों की सिँचाई से समृद्ध भोजपुर प्रदेश में बस चलाने के कारण वहाँ मुझे बाहुबलियों और लठैतों का भी समानांतर आतंक झेलना पड़ता था और उन्हें मिलाकर रखना पड़ता था। वह राजपूत-बहुल क्षेत्र था और यह तो सभी जानते हैं कि राजपूत प्रेम से आपके लिए अपना सर भी कटा सकते हैं पर उन्हें भय या लालच से नहीं दबाया जा सकता। मैं उस प्रदेश में यदि दस से अधिक वर्षों तक सफलता-पूर्वक अपनी बस चला सका तो वह

इसीलिए संभव हुआ कि मैंने थानेदारों, बाहुबलियों, और राजपूतों के इस त्रिभुज के बीचोंबीच अपनी स्थिति सौहार्दपूर्ण बनाये रक्खी। इसी सौहार्दपूर्ण नीति का पालन मेरे सबसे छोटे पुत्र शरतचंद्र ने भी किया जिसे प्रवेशिका परीक्षा के बाद मैंने अपने इस व्यापार में लगा दिया था। उपद्रवियों को तो वह मुफ्त में यात्रा कराता था, थानेवालों को व्यवहार और उपहार से प्रसन्न रखता था। राजपूतों से निरंतर उसका आत्मीय संबंध रहता ही था क्योंकि रात-दिन के उसके रक्षा-कवच तो वही थे। राजपूतों के साथ कैसे व्यवहार करना चाहिए और उनमें आत्मसम्मान की भावना कितनी तीव्र होती है, नीचे की इस घटना से स्पष्ट हो जायगा। एक बार मेरी बस एक गाँव के मुहाने पर खड़ी 5-6 राजपूतों के समूह को छोड़कर करीब 20 फिट आगे बढ़ गयी जहाँ 5-7 व्यक्ति और खड़े थे। वहाँ वह पीछेवाले व्यक्तियों की प्रतीक्षा करने लगी परंतु वे सभी आगे आकर, उनके सामने न रुकने के कारण, बस में बैठने की बनिस्बत यह कहते हुए वापस लौट गये कि कल बतायेंगे। मेरा लड़का शरतचंद्र जो बस में बैठा था, समझ गया कि ये लोग उपद्रव करेंगे क्योंकि बस उनके सामने न रुककर आगे के यात्रियों के सामने रुकी है, इसलिए इसमें अपना अपमान समझकर उन्हें संघर्ष करने और अपनी प्रभुता दिखाने का एक अवसर मिल गया है। उस समय वहाँ रुकने का तो प्रश्न ही नहीं था क्योंकि बस को प्रत्येक स्थान पर एक नियमित समय पर पहुँचना होता था जिसमें 1-2 मिनट का भी विलंब नहीं किया जा सकता था। बस को प्रत्येक दिन उसी राह से गुजरना होता था जहाँ से पिछले दिन, वह कुछ आगे बढ़ गयी थी। वहाँ दूसरे दिन 10-12 व्यक्ति लाठियाँ लिये खड़े थे। बस के रुकते ही उन्होंने चिल्लाना शुरु किया, 'शरतचंद्र कहाँ है!' बस खचाखच भरी हुई थी। मेरे लड़के ने बसयात्रियों के बीच से निकलते हुए कहा, 'यह मैं हूँ, भैया, मारिए न।' 'भैया' का शब्द सुनते ही भीड़ का मुखिया पानी-पानी हो गया। वह अपने साथियों से बोला, 'अरे, सब लोग लौट चलो। शरतचंद्र ने मुझे 'भैया' कह दिया है। वह तो मेरा भाई बन गया अब उससे झगड़ा कैसा!' और वे सभी वापस अपने गाँव चले गये। मैंने यह घटना जानकर शरत की बुद्धिमानी की प्रशंसा की। ऐसे प्रदेश में प्रतिदिन ऐसे संकटमय अवसरों से निकलते हुए, नित्य दो सौ मील गाड़ी निरंतर 10 वर्षों तक चलाना कोई हँसी-खेल नहीं था। मैंने अंत में बस-सेवा का नियमित कार्य छोड़ने का निश्चय किया और सहसा इसका एक अवसर भी हाथ आ गया। पोस्ट आफिस के कर्मचारियों के एक समूह ने गया से दक्षिण के प्रसिद्ध तीर्थ, रामेश्वरम् की तीर्थयात्रा के लिए मेरी बस को रिजर्व करा लिया। शरतचंद्र यात्रियों को लेकर हजारों मील दूर रामेश्वरम् की यात्रा पर निकल पड़ा।

वहाँ से लौटते समय उसके जी में आया कि केरल के अलेप्पी नगर में अपनी बहन से मिलता आऊँ जो स्थान बस के निर्धारित मार्ग से करीब 100 मील की दूरी पर था। बस को आँध्र प्रदेश के ऊटी नामक हिल स्टेशन पर रुकना था। उसने ड्राइवर और कंडक्टर को वहाँ पहुँचकर पोस्टआफिस के सामने ठहरकर अपनी प्रतीक्षा करने का निर्देश दे दिया और अकेला अलेप्पी चला गया। ऐसे उटपटाँग कार्यक्रम में जैसा होता है वही हुआ। बस को मार्ग में टायर पंचर होने तथा अन्य कारणों से रुकना पड़ा। शरत जब ऊटी पहुँचा तो निश्चित किये समय पर बस वहाँ कहाँ से मिलती! उन दिनों मोबाइल फोन चालू नहीं हुआ था। घबराकर उसने हैदराबाद लौटकर मेरी परिचिता इंदिरा धनराजगिरिजी के आवास से मुझे प्रतापगढ़, फोन किया। मैंने उससे कहा कि वह गया लौट आये, बस आप ही ड्राइवर ले आयेगा। तीन दिन के बाद शरत बस के खलासी के साथ गया से प्रतापगढ़ जहाँ मैं उस समय ठहरा हुआ था, मेरे पास आया और बोला कि खलासी ने लौटकर सूचना दी है कि बस रायपुर के पास पुलिस द्वारा जब्त कर ली गयी है और यात्री सभी उतर-उतर कर ट्रेन से वापस लौट आये हैं। मैं दो हजार रुपये लेकर उसके और खलासी के साथ रायपुर को चला। दो दिनों की यात्रा करने के बाद एक घनघोर जंगली गाँव के सामने मैंने बस को खड़ा पाया जहाँ पुलिस ने उसे रोक रक्खा था। ड्राइवर ने मुझे बताया कि लौटते समय रात के एक बजे आँध्र की सीमा में जब बस ने प्रवेश किया तो वहाँ लगे बैरियर को चुपके से हटाकर वे आगे बढ़ गये अन्यथा आँध्र प्रदेश का टैक्स नहीं देने के कारण पुलिस उन्हें रोक देती। आठ-नौ सौ रुपयों की टैक्स की रकम बचाने को उन्होंने ऐसा किया था परंतु भाग्य ने उनका साथ नहीं दिया। 15-20 मील आगे जाने के बाद एक गाँव के पास गाड़ी का क्राउन टूट गया। एक गुजरनेवाली बस पर चढ़कर ड्राइवर पास के नगर से नया क्राउन खरीदकर लाया और उसे रखकर बस के नीचे घुसकर पुराना क्राउन हटाने लगा। क्राउन हटाने के बाद बाहर निकलने पर उसने पाया कि उस नये क्राउन को गाँव के लड़के उठाकर ले गये है। जब तक वह इसकी खोज करने में लगा तब तक वहाँ पुलिस पहुँच गयी और आँध्र प्रदेश के टैक्स की रसीद न देखकर उसने गाड़ी जब्त करके वहीं एक ओर खड़ी करवा दी। बस पर सवार पोस्ट आफिस के यात्री यह गड़बड़ी देखकर डर गये। एक दूसरी बस पर सवार होकर वे पास के रेलवे स्टेशन पर चले गये और वहाँ से अपने-अपने घरों को लौट गये।

इसी पर घबराकर ड्राइवर ने खलासी द्वारा सारा संवाद गया भिजवाया था। मैंने वहाँ पहुँचकर रुपये देकर चेकपोस्ट के अधिकारी से एक सप्ताह के लिए

टैक्स की रसीद कटवा ली। उसमें तो आठ-नौ सो रुपये ही लगे परंतु मेरे शेष रुपये बस को सरकारी नियंत्रण से मुक्त कराने में समाप्त हो गये। अभी दूसरा क्राउन खरीदना था और रायपुर के पास से गया तक का बस के लिए डीजल भराना था क्योंकि वहाँ से गाड़ी में हजारों मील दूर गया तक पहुँचने का डीजल भी नहीं था। मेरे पास कुल 20-25 रुपये बचे थे। मैं एक बस से शरत के साथ पास के नगर में गया और एक सुनार के यहाँ अपनी अगूँठी का मूँगा निकलवाकर उसका सोना 250 रुपयों में बेच आया। परंतु इससे तो क्राउन की कीमत और पेट्रौल और हम लोगों के मार्ग में खाने-पीने का खर्च पूरा नही पड़ सकता था। मैं उस पंजाबी सरदार की दुकान पर गया और अपनी कठिनाई उसे बतायी। उसकी पत्नी ने हिंदी पढ़ी थी और वह उपन्यास-कहानियाँ भी लिखती थी। मेरे साहित्यिक रूप की जानकारी मिलने पर उसने बड़े प्रेम से हमें भोजन कराया और अपना लिखा हुआ एक उपन्यास मुझे जाँचकर भेजने को दे दिया। सरदार ने गया से मूल्य भेजने का कहकर नया क्राउन दे दिया। संकोचवश उससे मैंने और नकद रुपयों की माँग नहीं की क्योंकि अढ़ाई सौ रुपये नकद तो मेरे पास थे ही। उनसे मैंने गाड़ी की टंकी पूरी भरवा ली। परंतु जब उनका पैसा चुकाया तो मैंने डरकर देखा कि मेरे पास कुल दस रुपये बचे हैं। वहाँ से रामराम करते गाड़ी में नया क्राउन फिट करके हम आगे रवाना हुए। जहाँ गाड़ी रोक ली गयी थी, उस थाने के दरोगा ने मुझे बताया कि जिला दफ्तर में कलक्टर, एस. पी. आदि तक बिहार की एक बस के रोक लिये जाने की खबर फैल गयी है इसलिए आप रातोंरात यहाँ से पहाड़ी रास्ते से निकल जायँ। जो रास्ता उसने हमें बताया वह हजारों फुट ऊँचे पहाड़ों पर से जाता था। विवश होकर हमारी बस उसी बीहड़ मार्ग पर चल पड़ी। मेरे पुत्र ने मुझे कहा कि आप आराम से खाली गाड़ी में सो जायँ, हम रातों-रात यह पहाड़ी घाटी पार कर लेंगे। उस ऊँचे पहाड़ी प्रदेश में स्थान-स्थान पर बड़े-बड़े प्रपातों से जल के गिरने की आवाज आ रही थी और बीच-बीच में गाड़ी भी खराब हो कर रुक-रुक जाती थी। मैंने आज तक उससे भयानक पहाड़ी मार्ग नहीं देखा है यद्यपि गया से रामगढ़ चलनेवाली मेरी बस बिहार के भारत-विख्यात पहाड़ी जंगल प्रदेश, दनुआ-भलुआ से नित्य गुजरती थी और उससे सैंकड़ों बार मैं आया-गया था। अपरिचित देश, सरकार द्वारा पुनः पकड़े जाने का आतंक, घनघोर जंगली पहाड़ी मार्ग जिस में पचासों मील आगे पीछे कोई नगर नहीं, और बीच-बीच में, अँधेरी रात में बस का खराब हो-होकर रुक जाना—आज भी उस यात्रा की कल्पना करके मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। परंतु भगवान की कृपा से भोर होते-होते हमने सैंकडों मील का वह

पहाड़ी जंगल पार कर लिया और एक छोटे से शहर में जा पहुँचे। हमें जोरों की भूख लगी थी। पास में कुल दस रुपयों की पूँजी थी। दो-दो रुपयों में मैंने, मेरे पुत्र ने, ड्राइवर ने और खलासी ने किसी तरह अपनी भूख बुझाई। इस प्रकार मैं दो रुपये की पूँजी के साथ बस लेकर आगे रवाना हुआ। संतोष यही था कि अब दिन का समय था और भरेपूरे शहरों के मार्ग पर बस दौड़ रही थी। परंतु तभी एकाएक ड्राइवर ने मुझसे कहा- 'बाबू, डीजल समाप्त हो रहा है। तुरत भराना होगा।' सुनते ही मेरे हाथ-पाँव फूल गये। पूछने पर लोगों ने बताया, वहाँ से अगला नगर 20 मील दूर है जिसका नाम झाड़सुगुड़ा है। मैंने गया में एक बार अपने एक संबंधी को यह कहते सुना था कि झाड़सुगुड़ा में उनकी रिश्तेदारी है। अटपटा होने से यह नाम मेरी स्मृति में अटक गया था जो इस बार मस्तिष्क के अज्ञात कोने से निकलकर मेरे मन में कौंध गया। नाम ऊटपटाँग होते हुए भी मुझे उस अवस्था में बहुत प्रिय लगा। मैंने ड्राइवर से कहा कि किसी तरह हम लोग झाड़सुगुड़ा पहुँच जायँ, यह प्रयत्न करो। ड्राइवर को इसमें संदेह था, परंतु वह बीच-बीच में इंजन बंद कर-कर के गाड़ी चला रहा था कि डीजल की बचत हो। इंजन से भी दुगुनी गति से मेरा हृदय धड़क रहा था। मैं दम साधे गाड़ी की अगली सीट पर बैठा था और आगे के रास्ते को आँखों से निगलता जाता था। गाड़ी का इंजन जब बंद हो जाता और गाड़ी अपनी रफ्तार धीमी करने लगती तो मैं पाँवों से पाँव रखने के स्थान को ठेल-ठेलकर उसे थोड़ा और आगे बढ़ाने की हास्यास्पद चेष्टा करता। थोड़ी देर में झाड़सुगुड़ा की बाहरी सीमा दिखाई पड़ी। मैंने भगवान से गुहार लगायी कि कहीं वही बात न हो जाय --

किस्मत की ख़ूबी देखिये टूटी कहाँ कमंद
दो-चार हाथ जब कि लबे बाम रह गया।

लगता है भगवान ने मेरी पुकार सुन ली। झाड़सुगुड़ा के बाजार के पास के एक खाली स्थान में गाड़ी खड़ी करवा कर मैं उस अज्ञात संबंधी का मकान ढूँढ़ने निकला जिसके नाम का भी मुझे पता नहीं था। मैंने पूछा कि क्या यहाँ खंडेलवाल की कोई दुकान है। मेरी जाति वैष्णव खंडेलवाल वैश्यों की है जिनकी संख्या पूर्वी भारत में बहुत कम है और किसी नगर में भी वैष्णव खंडेलवाल वैश्य उँगली पर गिने जा सकते हैं। मुझे एक दुकानदार ने बताया कि पाँच-सात दुकानों के बाद ही एक खंडेलवाल सेठ की कपड़े की बड़ी दुकान है। मैं अपने पुत्र के साथ वहाँ पहुँचा और उनको अपना गया का परिचय देकर सारी बात बतायी। वे, मेरे गया के उसी पूर्व-कथित संबंधी के दूर के संबंधी थे। उन्होंने सब से पहले तो

प्रेम से हम सभी को भोजन कराया, फिर गाड़ी की टंकी में डीजल पूरा भरवा दिया और मेरे हाथ में हाथखर्च के लिए जबरन अढ़ाई सौ रुपये रख दिये।

इस प्रकार सब प्रकार ने निश्चिंत होकर हम वहाँ से निकले। हमारा अगला पड़ाव मधुवन नामक स्थान था जहाँ से आगे चलकर हमें आँध्र की सीमा लाँघकर बिहार में प्रवेश करना था। हम मधुवन में पहुँचने के करीब ही थे कि एक थाने में खड़े थानेदार ने हमें रुकने का इशारा किया। मेरा लड़का थानेदार का इशारा देखकर डर गया कि कहीं रायपुर के कलक्टर के आदेश से ही तो गाड़ी नहीं रोकी जा रही है क्योंकि हम अभी आंध्र प्रदेश की सीमा में ही थे। उसने ड्राइवर से कहकर गाड़ी तेजी से आगे बढ़वा दी और मधुवन में एक ढाबे के पास पहुँचकर ही रुकवाई। हम सभी गाड़ी से उतर ही रहे थे कि मोटर सायकिल पर सवार वह थानेदार यमदूत के समान आ पहुँचा और बोला- 'अपने कागज दिखाइए।' मेरे लड़के ने डरते-डरते गाड़ी से निकालकर उसे गाड़ी के कागज दिखाये। कागज तो पूरे थे ही, आँध्र प्रदेश के टैक्स की रसीद भी हमारे पास थी। उस दरोगा ने कहा, 'आपके कागज तो सब ठीक हैं। आपने गाड़ी क्यों नहीं रोकी?' मैंने कहा कि मैंने ड्राइवर को रोकने को कहा था पर वह बोला कि बगल में ढाबा है, वहीं चलकर रोकते हैं। मुझे पेशाब लगा था इसलिए भी हड़बड़ी थी। दरोगा सज्जन था। उसने मुझे दूसरे अच्छे भोजनालय का पता ही नहीं दिया, आगे का मार्ग भी पूरा समझा दिया। वहाँ से भोजन करके हम आगे बढ़े और रात के 11 बजे आँध्र की सीमा पर पहुँच गये। परंतु बस को पुलिस के चंगुल से मुक्त कराते समय मुझसे एक बहुत बड़ी भूल हो गयी थी जो फिर यहाँ भयावह रूप से मेरे सामने आकर खड़ी हो गयी।

मैंने जो आँध्र में टैक्स की रसीद बनवायी थी वह जल्दी में केवल तीन दिन के लिए बनवायी यद्यपि उतने पैसों में एक सप्ताह की रसीद आराम से बन सकती थी। परंतु उस समय तो मैं पुलिस के चंगुल से निकलने को आतुर था। मैंने सोचा कि तीन दिनों में तो मैं बिहार पहुँच ही जाऊँगा जहाँ के मेरे टैक्स आदि के सभी कागज पक्के हैं। गाड़ी रात में जिस समय आँध्र की सीमा पर पहुँची उस समय पचासों ट्रक आगे क्यू में लगे हुए थे। उस क्यू की वजह से हमारी गाड़ी का सीमापार करने का नंबर घंटों नहीं आता। 12 बजते ही तीन दिन की अवधि समाप्त हो जाती और फिर मेरी बस आँध्र सरकार द्वारा टैक्स की अदायगी न किये रहने के कारण जब्त कर ली जाती। अब क्या करता! अपनी मूर्खता पर क्रोध भी आता था परंतु क्रोध करने से तो कुछ काम बननेवाला नहीं

था। कुछ-न-कुछ तो करना ही था जिससे इस संकट से निकल सकूँ। मैंने आगे की ट्रक के सरदारजी को अपनी विपदा बतायी। गाड़ीवालों में भी आपसी प्रेम रहता ही है। एक दूसरे की सहायता करने में वे पीछे नहीं रहते। कहीं आगे गाड़ी की चेकिंग सरकारी अफसर कर रहे हों तो सामने से आनेवाली प्रत्येक गाड़ी अपनी गाड़ी की लाइट जला-बुझाकर इसका संकेत दे देती है। सरदारजी ने सहयोग किया। मेरी बस के साथ-साथ चलकर बगल के कच्चे मार्ग से उसे निकलवाते हुए वे उसे सब से आगे खड़ी कराने में सफल हो गये। फिर क्या था! कागज-पत्तर लेकर मैं चेकिंगवाले थाने में गया और ठीक 11-45 मिनट पर, अर्थात् 12 बजने के 15 मिनट पहले, अपने राज्य बिहार में प्रवेश कर गया।

अब क्या था! मैं हवा में अधर तैरता हुआ धरती पर आ गया था। अपने नगर गया में पहुँचने के बाद मैंने फिर कभी हजारों मील दूर की यात्रा पर बस को नहीं भेजा।

वस्त्र-व्यवसाय का संकट

अब मै अपने पैतृक वस्त्र-व्यवसाय के विषय पर आता हूँ। 1945-50 में बिहार सरकार ने कपड़े का नियंत्रण कर रखा था। सभी व्यवसायी अपने-अपने निश्चित कोटे के अनुसार थोक-विक्रेता के यहाँ से कपड़ा उठाते थे और खुदरा में उसे बेचते थे। हमारी दुकान खुदरा वस्त्रों की बिक्री की थी। मुझे वस्त्र-व्यवसाय में विशेष दिलचस्पी नहीं थी। मैं मुख्यतः समय मिलने पर गया से हजारीबाग, रामगढ़ जानेवाले अपने जन-परिवहन के व्यापार को सँभाल लेता था। खुदरा वस्त्र-व्यवसाइयों की यूनियन थी जिसके मंत्री और अध्यक्ष अन्य वस्त्र-व्यवसायी थे। एक दिन नगर में यह सूचना मिली कि सरकार ने अच्छे और मोटे कपड़ों को अलग करके अच्छे कपड़ो के लिए 4 व्यापारी सारे नगर में बना दिये हैं। उन्हींको उन अच्छे कपड़ों का सारा कोटा वितरणार्थ आवंटित कर दिया जायगा। उन चार व्यापारियों में दो तो अध्यक्ष और मंत्री थे और दो थे उनके मित्र। यह सारी योजना और उसका कार्यान्वयन गुप्त रूप से हुआ था। इस योजना के कारण नगर के सारे वस्त्र-व्यवसाय का मुख्य नफा उन चारों दुकानों में चला जाता और शेष 60-70 दुकानदार एक प्रकार से इस व्यवसाय से अपनी रोजी-रोटी कमाने में असमर्थ हो जाते क्योंकि सारा अच्छा और बिकाऊ कपड़ा सुपरफाइन के नाम से उन्हीं चार दुकानों को विक्रयार्थ आवंटित होना था। इस सूचना से मैं सचेत हो गया। व्यापारी-वर्ग भी मुझे घेरकर इस विषय में कुछ करने का आग्रह करने लगा जिससे उनकी रक्षा हो सके और उनकी रोजी-रोटी बच सके।

मैंने सब से पहले यह निर्णय किया कि इस लड़ाई को चलाने के लिए पहले खुदरा वस्त्र यूनियन के अध्यक्ष और मंत्री को हटाकर उस पर अधिकार करना होगा और फिर यूनियन की ओर से इस संबंध में संघर्ष चलाना होगा। फलतः, मैंने अध्यक्ष और मंत्री पर अविश्वास का प्रस्ताव लाकर खुदरा वस्त्र-व्यवसायियों की मीटिंग बुलाई। चार सुपरफाइनवालों को छोड़कर शेष 60-70 वस्त्र-व्यवसायी तो मेरे साथ थे ही, पुराने अध्यक्ष और मंत्री के लाख प्रयत्न करने पर भी वे दो तिहाई से भी अधिक मतों से अपने पद से हटा दिये गये और मैं मंत्री चुन लिया गया। मैंने एक वयोवृद्ध वस्त्रविक्रेता को अध्यक्ष चुनवा दिया।

इस प्रकार मंत्रीपद ग्रहण करने के बाद मैंने इस संबंध में सरकार से पत्राचार प्रारंभ किया और राज्य-मंत्रिमंडल तक दौड़ लगानी शुरू की। सरकार का काम तो ढीला-ढाला चलता ही है पर शीघ्र ही एक संयोग मुझे प्राप्त हो गया जिससे मुझे बड़ा लाभ हुआ। होली का समय आ रहा था। अपनी माँग मनवाने के लिए मैंने गाँधीजी के सत्याग्रह के समान सारे नगर में खुदरा वस्त्र-विक्रेताओं की अनिश्चित-कालीन हड़ताल करवा दी। होली पर कपड़े के लिए नगर के अतिरिक्त चारों तरफ के देहात से भी लोग आते हैं। ऐसे में दुकानें बंद देखकर जिलाधीश श्री विभूतिनाथ झा ने मुझे बुलाया। वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय और हिंदू विश्वविद्यालय के उपकुलपति रह चुके डॉ. अमरनाथ झा के छोटे भाई थे और कवि के नाते मुझे भली प्रकार जानते थे। उन्होंने बड़े प्रेम से दफ्तर में मुझसे अकेले में सारी बातें सुनीं और मेरी बातों के औचित्य को समझकर बोले कि आप दुकानें खुलवा दें ताकि होली पर लोगों को कपड़ा मिल सके। मैं एक सप्ताह में इस प्रश्न को आपकी इच्छा के अनुरूप सुलझा दूँगा। मैंने उनके कहने पर वस्त्र-विक्रेताओं की हड़ताल समाप्त करवा दी। विभूतिनाथ झा ने चारों दुकानों को ही सारा सुपरफाइन कपड़े का कोटा मिलने का आदेश निरस्त कर दिया और कुल कपड़े का वितरण यूनियन के मंत्री के नाते मेरे हाथ में सौंप दिया। मैंने कुल कपड़े के वितरण के कोटे में नगर के सभी खुदरा वस्त्र-व्यवसायियों का बराबर-बराबर भाग निश्चित कर दिया और निरंतर अपने आदेश से सारे वस्त्र-व्यापारियों को उनके हिस्से का कपड़ा बँटवाना चालू कर दिया। यह क्रम तब तक चलता रहा जब तक कपड़े पर सरकारी नियंत्रण रहा। कपड़ों की बहुतायत हो जाने पर अनावश्यक होने के कारण यह समाप्त हो गया।